गुरुकुल-पत्रिका

पूर्णाङ्क ९९ ★

१९५६

व्यवस्थापक : श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
सम्पादक समिति : श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री शङ्करदेव विद्यालङ्कार
श्री रामेश बेदी (मन्त्री)

इस अङ्क मे

अगले अङ्क में

भारत की मौलिक एकता का आधार	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
वेद और स्त्रियों का विवाहित जीवन	श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति
गो-रक्षा और गो-सदन	श्री किरपालसिंह
समर्पण-पत्र	श्री पीताम्बर नारायण शर्मा

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएँ।

मूल्य देश में ४) वार्षिक **एक प्रति**
विदेश में ६) वार्षिक **छः आने**

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

आपस्तम्ब-धर्मसूत्र के प्रायश्चित्त

श्री रामनाथ वेदालंकार

जिन कर्मों को करने से मनुष्य पतित तथा जाति-बहिष्कृत हो जाता है उन्हें पतनीय कर्म कहते हैं। इन्हें महापातक भी कह सकते हैं। इन्हें करने वाला बिना प्रायश्चित के शुद्ध नहीं होता। प्रायश्चित्त न करने पर जन्मान्तर में भी ये उस के साथ जाते हैं। इस के अतिरिक्त कुछ कर्म ऐसे भी हैं जो पतनीयों की श्रेणी में तो नहीं आते, किन्तु उन के करने से मनुष्य अपवित्र हो जाता है। इन्हें अशुचिकर कर्म कहते हैं। अशुचिकर कर्म करने वाला जातिबहिष्कृत नहीं होता, पर शुद्ध होने के लिए प्रायश्चित्त उसे भी करना पड़ता है। आपस्तम्ब के अनुसार पतनीय कर्म ये हैं—चोरी, ब्रह्म-हत्या (आभिशस्त्य), किसी भी मनुष्य का वध, वेद का त्याग, गर्भपात, माता और पिता की सयोनि मौसी, बुआ आदि में तथा उन की संतानों में गमन, और जिन के साथ मेल-जोल वर्जित है उन के साथ मेल-जोल। गुर्वासखी और गुरुसखी तथा अन्य परस्त्रियों में गमन करने से भी पतित होता है। इन पतनीय कर्मों के अतिरिक्त दूसरे धार्मिक कर्मों को भी यदि मनुष्य बार-बार करे तो पतित कहलाता है। त्रैवर्णिक स्त्रियों का शूद्र में गमन करना, मनुष्य–कुत्ता–ग्राम्यकुक्कुट–ग्राम्यशूकर–मांसभक्षी जन्तु आदि प्रतिषिद्ध मांस वाले प्राणियों का मांस भक्षण करना, मनुष्यों का मूत्र-पुरीष खा लेना, शूद्र का उच्छिष्ट खा लेना, आर्यों का अपपात्र स्त्रियों में गमन करना ये अशुचिकर कर्म हैं। किन्तु आपस्तम्ब कहते हैं कि कुछ का मत है कि ये कर्म, भी पतनीयों में ही सम्मिलित किये जाने चाहिएं। उन के मत में इन से अतिरिक्त जो अन्य दोषयुक्त कर्म हैं वे अशुचिकर कहलाते हैं।

आगे इन पतनीय तथा अशुचिकर कर्मों के प्रायश्चित लिखे जाते हैं। इन्हें पढ़ते हुए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ये प्रायश्चित्त हैं, दण्डविधान नहीं। प्रायश्चित्त और दण्डविधान में बहुत अन्तर है। प्रायश्चित शुद्ध होने के लिए स्वेच्छा से किया जाता है, यदि कोई गलती अनुभव नहीं करता और शुद्ध होना नहीं चाहता तो उस की इच्छा पर है कि वह प्रायश्चित्त न करे, किन्तु दण्ड तो भोगना ही पड़ता है। आपस्तम्ब के अनुसार नीचे जो प्रायश्चित्त लिखे जा रहे हैं उन में कुछ अत्यन्त कठोर हैं, पर साथ में विकल्प रूप में उन के बदले अपेक्षाकृत कम कठोर प्रायश्चित्त भी हैं। यह अपराधी की अपनी भावना पर है कि वह किसे चुनता है। कई अपराधी ऐसे भी हो सकते हैं जो अपने अपराध पर पश्चात्ताप कर आत्मा को शुद्ध करने के लिए कठोरतम प्रायश्चित्त की भट्ठी में जलना ही पसन्द करें। इन में कुछ प्रायश्चित्त ऐसे भी हैं जिन में प्रायश्चित्त करते-करते प्रायश्चित्तकर्ता का प्राणान्त हो जाता है, जैसे कि आजकल भी कोई-कोई आत्मशुद्ध्यर्थ आमरण अनशन करने वाले देखे जाते हैं। उन प्रायश्चित्तों का ऐहलौकिक फल तो केवल इतना ही है कि उन्हें करने

वाले समाज की दृष्टि में शुद्ध मान लिये जाते हैं और कलंक से बच जाते हैं; विशेष फल पारलौकिक है कि जन्मान्तर में वे अशुद्ध आत्मा के साथ नहीं जाते और उन्हें पारलौकिक यातनाएं नहीं सहनी पड़तीं। किन्तु आत्मघात वाले प्रायश्चित आपस्तम्ब के काल में भी सर्वसम्मत नहीं थे। कुछ आचार्य उन का विरोध करते थे। वे कहते थे कि एक पातक का प्रायश्चित्त करने के लिए आत्मघात रूपी एक और नया पातक कर बैठना कहाँ तक ठीक है। अस्तु, अब प्रायश्चित्तों का उल्लेख करते हैं।

क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र की हत्या करने पर क्रमशः सहस्, सौ और दस गौएं पापशुद्धि के लिए दान करे। गौओं के साथ में एक-एक वृषभ भी दे। इन वर्णों की स्त्रियों की हत्या करने पर भी यही प्रायश्चित है।

क्षत्रिय, वैश्यों में जो वेदाध्यायी हो या जिसने सोमयाग की दीक्षा ली हो उस की तथा किसी भी ब्राह्मण की हत्या करने पर अभिशस्त (ब्रह्म-हत्यारा) कहाता है। ब्राह्मण के उस गर्भ को जिस में अभी स्त्री या पुरुष के लक्षण प्रकट नहीं हुए हैं तथा ऋतुस्नाता ब्राह्मणी की हत्या कर के भी अभिशस्त होता है। उस का प्रायश्चित्त यह है कि जंगल में कुटी बना कर, मौनी होकर, अपने मारे हुए शव के सिर को ध्वजा बना कर, सन की धोती का चौथाई टुकड़ा नाभि से नीचे घुटनों से ऊपर लपेट कर रहे। गांव को जाते समय रथ के पहियों से पड़ी हुई दोनों लकीरों के बीच में चले सामने से किसी अन्य को आता हुआ देख कर मार्ग से दूर हट जाये। टूटा हुआ, कुछ-कुछ ताम्र वर्ण का मृत्पात्र लेकर गाँव में जाये। 'कौन अभिशस्त को भिक्षा देगा' यह कहता हुआ सात घर घूमे। इस प्रकार जो कुछ प्राप्त हो उसी से जीविका करे। कुछ न मिले तो उपवास कर के ही रहे। इस प्रायश्चित्त काल में गौओं की रक्षा में तत्पर रहे। भिक्षा के अतिरिक्त गौओं के गाँव से निष्क्रमण तथा प्रवेश के समय वह दूसरी बार गाँव में जाये। शेष सारा समय जंगल में रहे। बारह वर्ष उस के इस प्रकार व्रत करने के पश्चात् शिष्टजन उस की परीक्षा करें। परीक्षा में खरा उतरने पर वह शुद्ध समझा जाये। अथवा बारह वर्ष के व्रत के बाद वह जिस रास्ते से दस्यु लोग गौएँ चुराने के लिये गाँव में आते-जाते हों उस रास्ते में कुटी बना कर दस्युओं से अपहृत ब्राह्मणों की गौओं को वापिस छीन लेने की इच्छा से रहे। तीन बार दस्युओं से लड़ लेने के बाद, चाहे वह उन से हार जायं चाहे उन्हें हरा दे, पाप से मुक्त हो जाता है। अथवा बारह वर्ष का उपर्युक्त व्रत कर के अश्वमेध के यज्ञान्त स्नान में ऋत्विजों के साथ स्नान कर लेने पर भी पाप मुक्त हो जाता है। धर्म और अर्थ (धन) का संघर्ष उपस्थित होने पर जो धर्म को त्याग कर अर्थ को चुनता है उस के लिए भी यही प्रायश्चित्त है। गुरु[1] की हत्या करने पर या जो वेद पढ़ चुका है और सब कर्म समाप्त कर चुका है ऐसे ब्राह्मण की हत्या करने पर इसी विधि से अन्तिम श्वास तक आचरण करता रहे। इस लोक में उस की शुद्धि नहीं हो सकती, आमरण प्रायश्चित्त से मृत्यु के बाद पाप अवश्य नष्ट हो जाता है।

जो गुरुपत्नी में गमन करे वह अण्डकोषों सहित अपने शिश्न को काट कर अंजलि में रख कर कभी न लौटने के लिए दक्षिण दिशा की ओर मुख कर के चलता चला जाये, जब तक गिर कर मर न जाये। अथवा तपी हुई मूर्ति का आलिङ्गन कर अपने को समाप्त कर दे। सुरापान करने वाला अग्नि से खौलती हुई सुरा पिये।

चोरी करने वाला अपने बाल बिखरा कर कन्धे पर मूसल रख कर राजा के पास जाकर अपनी करतूत कहे। राजा उसी मूसल से उसे मार डाले। मर कर

---

१. गुरु=पिता, आचार्य आदि—हरदत्त।

वह पापमुक्त हो जाता है। अथवा वह अग्नि में प्रविष्ट हो जाये। अथवा तीक्ष्ण तप करे। अथवा शनैः शनैः अन्न कम करता हुआ अपने को समाप्त कर दे। अथवा कृच्छ्र-संवत्सर[1] व्रत करे। इस प्रसङ्ग में एक श्लोक उद्धृत किया जाता है जिस का भाव यह है—"जो चोरी करे, सुरा पिये और गुरुपत्नी में गमन करे वह चौथे काल (बीच में दो भोजन-काल छोड़ कर) थोड़ा सा भोजन लिया करे, प्रातः मध्यान्ह, सायम् स्नान करे, दिन में खड़ा रहे, रात्रि बैठ कर बिताये, इस प्रकार तीन वर्ष तक आचरण करता रहे तब उस पाप से छूटता है। किन्तु ब्रह्महत्या करने वाले के लिए यह प्रायश्चित्त नहीं है।" ब्राह्मण के अतिरिक्त कोई अन्य वर्ण यदि ब्राह्मण की हत्या करे तो उस का प्रायश्चित्त है कि वह युद्धभूमि में जाकर सेनाओं के बीच में लड़ा हो जाये और मारा जाये। अथवा अपने लोम, त्वचा, मांस आदि का अग्नि में होम करवा कर फिर स्वयं भी उस अग्नि में प्रविष्ट हो जाये।

कौआ, गिरगट, मोर, चकवा, हंस, भास, मेंढक, नेवला, गन्धमूषिका, कुत्ता इनकी हिंसा करने पर वही प्रायश्चित्त है जो शूद्र की हिंसा करने पर कहा गया है अर्थात् दस गौवों और एक वृषभ का दान। दूध देने वाली गौ और बैल की अकारण हिंसा करने पर भी यही प्रायश्चित्त है। अन्य प्राणी इतने परिमाण में मारे जायें कि एक शकटवाही बैल के उठाने योग्य बोझ हो जाये तब भी यही प्रायश्चित्त है।

अनिन्द्यों की निन्दा करने पर अथवा अनृतभाषण करने पर तीन दिन दूध, क्षार और लवण से रहित भोजन करे। किन्तु शूद्र यदि यही अपराध करे तो वह सात दिन का उपवास करे। अब तक जो प्रायश्चित्त कहे हैं वे स्त्रियों के लिए भी वैसे ही हैं।

जिनकी हत्या करने से मनुष्य अभिशस्त कहलाता है उन का एक अङ्ग यदि काट दे, जिसके काटने पर भी उसके प्राण बचे रहें, तो वह पूर्वोक्त दस गौओं तथा एक वृषभ के दान का ही प्रायश्चित्त करे। अनार्य व्यवहार, परदोषकथन, प्रतिषिद्धाचार, अभोज्य-अपेय वस्तुओं का खान-पान, शूद्रा में वीर्यसेचन,अयोनि में वीर्यसेचन करने पर तथा बुद्धिपूर्वक या अबुद्धिपूर्वक दोषवत् कर्म करने पर अब्देवता वाली ऋचाओं से, वरुण देवता वाले मन्त्रों से अथवा 'पवित्र' नामक अनुवाक के मन्त्रों से, जैसा कार्य किया हो उसी के अनुपात में जलस्नान या जलप्रोक्षण करे। जो ब्रह्मचारी अपना ब्रह्मचर्यव्रत तोड़े वह गर्दभयाग करे।

मिथ्याधीत (अध्ययन के नियमों का अतिक्रमण कर के पढ़ने) का प्रायश्चित्त यह है कि एक वर्ष तक आचार्यसेवा में रहता हुआ मौन रहे, केवल स्वाध्याय के समय या जब आचार्य अथवा आचार्यपत्नी से कुछ निवेदन करना हो तब या भिक्षाचरण के समय मौन तोड़े। इसके अतिरिक्त निम्न प्रायश्चित्त मिथ्याधीत के भी हैं तथा पतनीयों को छोड़ कर अन्य दोषवत् कर्मों के भी हैं। 'कामः आकर्षीत् स्वाहा', 'मन्युः अकार्षीत् स्वाहा' इन मन्त्रों का उच्चारण कर काम और मन्यु के लिए हवि दे, अथवा उक्त मन्त्रों का जप करे। अथवा पर्व (पौर्णमासी, अमावस्या) के दिन केवल तिलभोजी होकर या उपवास करके अगले दिन स्नान करके, प्राणायाम करके या बिना प्राणायाम के सहस्र बार गायत्री का पाठ करे। अथवा श्रावणी पूर्णिमा के दिन तिलभोजी होकर या उपवास करके, अगले दिन महानदी के जल में स्नान करके गायत्री मन्त्र से सहस्र बार समिधाएं आधान करे या जप करे। अथवा पवित्रता के लिए इष्टियाँ तथा सोमयाग करे।

अभोज्य भोजन करके तब तक उपवास करे जब तक आंतें मलरहित हो जायें। वे मलरहित सात रात्रियों

---

१. तीन दिन रात्रि का भोजन बन्द, तीन दिन दिन, का भोजन बन्द, तीन दिन बिना मांगे जो मिले सो खाना, तीन दिन कुछ न खाना—इसे 'कृच्छ्र द्वादशरात्र' कहते हैं। यही व्रत एक वर्ष तक किया जाये तो वह 'कृच्छ्र संवत्सर कहलाता है।

में होती हैं। अथवा हेमन्त-शिशिर ऋतु में दोनों सन्ध्या-कालों में जल स्नान करे, अथवा 'कृच्छ्रद्वादशरात्र' व्रत करे।

इकट्ठे बहुत से अपतनीय दोषवत् कर्म करने पर बिना भोजन किए तीन बार वेदपारायण करने से पापमुक्त हो जाता है। अनार्या के साथ शयन करे, ब्याज पर रुपया दे कबायपान करे, अब्राह्मण के समान प्रत्येक व्यक्ति की वन्दना करे तो उस का प्रायश्चित्त यह है कि घास पर बैठ जाये और सूर्योदय से तब तक बैठा रहे जब तक पीठ तपने न लगे। ब्राह्मण शूद्रवर्ण की सेवा करके एक दिन रात में जो पाप संचित करता है। उसे वह तीन वर्ष बीच में दो-दो भोजनकाल छोड़ कर प्रति चौथे काल स्नानोपरान्त भोजन करता हुआ दूर कर पाता है।

चोरी का प्रायश्चित्त पहले कह चुके हैं। उसी का दूसरा प्रायश्चित्त यह है कि चुरा कर लाई हुई अधर्मा-हृत वस्तुओं को छोड़ दे, वह कहे 'मैं और अधर्म साथ नहीं रह सकते'। नाभि से नीचे और घुटनों से ऊपर वस्त्र लपेट कर, प्रति दिन तीन बार प्रातः, मध्यान्ह, सायं स्नान करता हुआ दूध, क्षार, लवण रहित भोजन करता हुआ बारह वर्ष तक घर में प्रवेश न करे तब वह शुद्ध हो जाता है। यही प्रायश्चित्त अन्य पतनीय कर्मों का भी हो सकता है। किन्तु गुरुपत्नीगामी के लिए यह प्रायश्चित्त नहीं है। उसे तो यही उचित है कि वह सुच्छिद्र मूर्ति के अन्दर बैठ कर, उसमें दोनों ओर से अग्नि लगवा कर अपने आप को जला दे। पर हारीत का मत है कि यह प्रायश्चित्त व्यर्थ है क्योंकि परहत्या के समान आत्महत्या करना भी महापाप है। अतः उस का कथन है कि गुरुतल्पगामी चोरी के लिए निर्दिष्ट उपर्युक्त प्रायश्चित्त को ही अन्तिम श्वास पर्यन्त करता रहे, इस लोक में उसकी शुद्धि नहीं हो सकती, मरणोत्तर वह पापमुक्त हो जाता है।

जो अपनी स्त्री का त्याग करे वह गधे की खाल, जिसके बाल बाहर रहें, ओढ़ कर 'मुझ दार-त्यागी को भिक्षा दो' यह कहता हुआ सात घर घूमे। छः महीने इसी प्रकार जीविका करे, तब शुद्ध होता है। किन्तु यदि स्त्री पति का त्याग करे तो वह उतने ही समय कृच्छ्र द्वादशरात्र व्रत करने पर शुद्ध हो सकती है।

भ्रूणपात करने वाला[1] कुत्ते या गधे की खाल, जिसके बाल बाहर रहें, पहन कर पानी पीने के लिए पुरुष की खोपड़ी लेकर, दण्ड के रूप में खाट की पाटी लेकर 'कौन मुझ भ्रूणघाती को भिक्षा देगा' इस प्रकार अपने कर्म का नाम लेता हुआ घूमे। गांव में अपनी जीविका पाकर फिर वह किसी शून्यगृह में या वृक्ष के नीचे वास करे और समझे कि आर्यों के साथ मेरा मिलना-जुलना नहीं हो सकता। इसी प्रकार अन्तिम श्वास तक करता रहे। मरणोपरान्त वह पाप से छूट जाता है।

पतित लोग गांव से बाहर इकट्ठे घर बना कर रहें, वे आपस में ही एक-दूसरे को पढ़ायें, यज्ञ करायें, आपस में ही विवाह करें। प्रायश्चित्त से शुद्ध होने के पश्चात् वे आर्यों के समाज में आ सकते हैं।

अशुचिकर कर्मों में से जिन का प्रायश्चित्त नहीं कहा उन का प्रायश्चित्त अपराध की लघुता-गुरुता के अनुसार उपर्युक्त कर्मों के प्रायश्चित्त के समान ही जानना चाहिए। उस की अवधि एक वर्ष से लेकर एक दिन तक की हो सकती है।

---

१ भ्रूणहा=षडङ्ग वेद के अध्येता, अर्थवित्, कर्मकाण्डी ब्राह्मण की हत्या करने वाला—हरदत्त।

★

१९५०-५१ से बुनियादी स्कूलों की संख्या ३३, ७३० थी। १९५५-५६ में यह संख्या बढ़ कर ४१, १२४ तक पहुंच गई।

थोड़ी आमदनी वालों की आवास योजना नवम्बर १९५४ में शुरू हुई थी तब से अब तक केन्द्रीय सरकार ने इस योजना के अन्तर्गत विभिन्न राज्यों को लगभग १२ करोड़ ७४ हजार रुपये के ऋण दिए हैं।

शिक्षा में व्यवहारवाद

श्री महेशचन्द्र एम. ए., एम. एड.

इस सिद्धान्त में व्यावहारिक वस्तुओं को महत्व दिया गया है । इसका दूसरा नाम प्रयोगवादी सिद्धान्त भी है क्यों कि इस में प्रयोगों पर जोर दिया गया है, वास्तव में व्यवहारवाद में दो सिद्धान्त सम्मिलित कर दिये गये हैं, एक तो प्रयोगवाद और दूसरी प्रोजेक्ट पद्धति । इस के पीछे विचारधारा यह है कि शिक्षा में वही विषय रखे जाँय जो व्यावहारिक महत्व के हैं तथा उन्हीं प्रणालियों का उपयोग किया जाय जो विज्ञान की शिक्षा में प्रयुक्त की जाती हैं ।

व्यवहारवाद सिद्धान्त दृष्टि से प्रकृतिवादी है और परिणामवाद की दृष्टि से आदर्शवादी है । इसकी विचार-धारा प्रकृतिवाद या विज्ञानवाद पर आधारित है लेकिन इसका लक्ष्य आदर्शवाद पर आश्रित है । स्पष्ट करने के लिये हम कह सकते हैं कि एक ओर तो यह ईश्वर या आत्मा में आस्था न रख कर प्रकृति में विश्वास रखता है और इसलिए प्रकृति तथा मनुष्य को अपूर्ण समझता है । दूसरी ओर इस का मत है कि मनुष्य को अपूर्ण समझता है । दूसरी ओर इस का मत है कि मनुष्य का लक्ष्य पूर्णतया को प्राप्त होना चाहिए जो भविष्य में सम्भव है । उन का कहना है कि प्रकृति प्रयोग कर रही है । मनुष्य को भी प्रयोग करना चाहिए । प्रकृति अभी अपूर्ण है लेकिन एक दिन पूर्णता प्राप्त कर लेगी, इसी प्रकार मनुष्य को उन्नति करते जाना चाहिए जिस से एक दिन वह स्वयं तथा उस का समाज पूर्णता प्राप्त कर सके ।

व्यवहारवादी कहते हैं कि उपयोगिता के व्याव-हारिक दृष्टिकोण से शिक्षा दी जानी चाहिए । साथ ही मनुष्य को एक आदर्श भविष्य में विश्वास रखना चाहिए जब कि अमीर गरीबों का शोषण न करेंगे और सब नागरिक सुखी तथा शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करेंगे ।

इस में नैतिकता और धर्म को महत्व नहीं दिया गया । प्रोफेसर ड्यूई ने इस ओर संकेत मात्र किया है । उस का विचार प्रतीत होता है कि शिक्षा के क्षेत्र में धर्म का कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है ।

उस के अनुसार जो व्यावहारिक है वही सत्य है, जो उपयोगी है वही ठीक है । ऐसा कोई अमर सत्य नहीं है जिस को ईश्वर या किसी अन्य ने स्थापित कर दिया हो बल्कि समयानुसार सत्य ही बदलता रहता है । कर्तव्य दृष्टि से ही कर्तव्य करना, उस के लिए कोई महत्व नहीं रखता । कर्तव्य तभी महत्वपूर्ण है जब उस से किसी लक्ष्य की सिद्धी होती हो । इसी प्रकार उस का विश्वास है कि कलाएं तथा नैतिकता भी व्या-वहारिक जीवन में उपयोग में आनी चाहिए यदि उन्हें महत्वपूर्ण बनाना है तो आदर्शवादियों की भांति वह इन्हें केवल आनन्द या कर्तव्य के लिए स्वीकृत करने को तैयार नहीं है । उस की दृष्टि में—कला, कला के लिए सौन्दर्य, सौन्दर्य के लिए तथा नैतिकता नैतिकता के लिए ये विचार कोई महत्व नहीं रखते ।

वह समस्त गूढ़ताओं, शाब्दिक तथा अनुमानित सिद्धान्तों के विरुद्ध है अर्थात् उन काल्पनिक विचारों को पसन्द नहीं करता जिनका वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है । मानसिक विकास या आदर्शवादी सिद्धान्त जो मानवीय विषयों तथा कला और साहित्य पर जोर देते हैं उन के विरुद्ध पड़ते हैं । इन के स्थान पर वह निश्चित स्पष्ट तथा वास्तविक तथ्यों को महत्व देता है और कार्य तथा शक्ति में विश्वास रखता है उस का कथन है कि पूर्णसत्य नाम की कोई वस्तु नहीं है । सत्य का निर्माण हो रहा है और अभी तक उस की प्राप्ति नहीं हुई है । इस लिए भूतकाल की ओर नजर रखना तथा प्राचीन लोगों ने जो बातें कही हैं उन में विश्वास रखना उचित नहीं है । उस का कथन है कि यह हमारा कर्तव्य और गौरव है कि हम जगत के निर्माण में योग दें और प्रयोगों के द्वारा सत्य

को खोज निकालें जिस से कि मनमाने विश्व का निर्माण कर सकें।

वह व्यवहार और कार्य की तुलना में विचार को गौण स्थान देता है। उस के अनुसार ज्ञान जब तक व्यवहार में न आ सके तब तक अपूर्ण है। उस के अनुसार ज्ञान तथा विचार बिना व्यावहारिक महत्व के बेकार हैं।

शिक्षा में निगमन तथा प्रयोगवादी पद्धति का उपयोग होना चाहिए। पहली पद्धति के अनुसार मूर्त वस्तुएं या विषय छात्र के सम्मुख उपस्थित कर दिये जाते हैं और परिभाषाएं अन्त में बनाई जाती हैं। दूसरी पद्धति में बालक को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाता है कि वह स्वयं प्रयोग कर के या अवलोकन, तुलना, विश्लेषण, चुनाव आदि के द्वारा सत्य को खोज निकाले। पहली पद्धति का उपयोग व्याकरण में तथा दूसरी का विज्ञान में होता है। व्यवहारवाद के अनुसार शिक्षा में इन दोनों पद्धतियों का उपयोग होना चाहिए।

इतना ही नहीं बल्कि शिक्षा एक उद्देश्यपूर्ण कार्य रूप में होनी चाहिए। उद्देश्य रहित कार्य का कोई अर्थ नहीं होता है। आधुनिक शिक्षक पूर्णतया उद्देश्य विहीन है। विद्यार्थियों को पता तक नहीं होता कि विभिन्न विषय किस लिए पढ़ाए जा रहे हैं। शिक्षा तथा व्यावहारिक जीवन के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः शिक्षा प्रभाव रहित और एक दबावपूर्ण कार्य है। प्रोजेक्ट प्रणाली में विद्यार्थियों के सामने सदैव एक लक्ष्य रहता है। इस लिए ड्यूई ने इस पद्धति को अपनाया है।

व्यवहारवाद के अनुसार शिक्षा का केन्द्र बालक होना चाहिए न कि अध्यापक या पाठ्य विषय, पाठ्य-क्रम, समय विभाग आदि का निर्माण बालक की रुचि तथा आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए होना चाहिए। दूसरे शब्दों में शिक्षा तर्क के स्थान पर मनोविज्ञान के आधार पर दी जानी चाहिए। आदर्शवाद के अनुसार संस्कृति और ज्ञान महत्वपूर्ण माने जाते हैं। बालक के विचारों, आवश्यकताओं और रुचियों का कोई ध्यान नहीं दिया जाता। लेकिन व्यवहारवाद में इस का उल्टा है।

ड्यूई का कथन है कि कक्षा में क्रिया का जोर रहना चाहिए अर्थात् बालक केवल अध्यापक की बातों को ही सुनते न रहें, बल्कि वे पुस्तकालय की पुस्तकों को हाथ से छुएं, शिक्षा सम्बन्धी वस्तुओं का उपयोग करें। तथा स्वयं प्रयोग करें। इस प्रकार वह बैठे हुए सुनते रहने के स्थान पर क्रिया पद्धति या कार्य सीखने के सिद्धान्त को अच्छा समझता है।

ड्यूई के अनुसार बच्चे परस्परिक वार्तालाप तथा सहयोग में विशेष रुचि रखते हैं। वे पूछ-ताछ, प्रश्न करने, वस्तुएं बनाने, कार्य करने खेलने, अभिनय तथा कलात्मक अभिव्यंजना में बहुत आनन्द लेते हैं। शिक्षा में इन सब बातों को स्थान मिलना चाहिये ताकि शिक्षा कार्य प्रभावपूर्ण और रुचिपूर्ण हो सके। बच्चों को अच्छी आदतें सिखानी चाहिएं। उन्हें कपड़े पहनना, भोजन करना, बैठना तथा उठना आना चाहिए। उन्हें आत्म निर्भरता तथा सहयोगपूर्ण सामाजिक जीवन व्यतीत करना चाहिए। पठन, लेखन तथा गणित शिक्षा के साधन होने चाहिएं न कि साध्य। इस प्रकार उसने प्राचीन शिक्षा पद्धति की कटु आलोचना की है और बालक की मूल प्रवृत्तियों तथा रुचि को महत्व प्रदान किया है।

विषयों को एक दूसरे से सम्बद्ध कर देना चाहिए। उन्हें अलग-अलग कक्षों में कठोरता से बन्द नहीं कर देना चाहिए क्यों कि इस से विशृङ्खलित व्यक्तित्व का निर्माण होता है। विश्व में ज्ञान परस्पर सम्बद्ध दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार विद्यालयों में शिक्षा भी परस्पर सम्बद्ध रूप में दी जानी चाहिए। यदि विषयों में पूर्णतया पृथक्-पृथक् पढ़ाया जाता है तो एक ओर तो बालक उनमें रोचकता का अनुभव नहीं करता और

दूसरी ओर सचाई को स्पष्ट रूप में नहीं समझ पाता।

व्यवहारवाद के अनुसार उपयोगी कार्यों को शिक्षा में सब से अधिक महत्व प्राप्त होना चाहिए। समाज में किये जाने वाले कार्यों के समान स्कूल में भी दूकानदारी, रसोई पकाना, बुनना, बढ़ई गीरी तथा घरेलू दस्तकारियाँ आदि सिखाई जानी चाहिएं। इन कार्यों के करने से मानसिक तथा शारीरिक शिक्षा में सामंजस्य उत्पन्न होता है। मस्तिष्क के साथ-साथ नेत्रों तथा हाथों की भी साधना हो जाती है। अवलोकन संयोजन, विवेचन तथा कल्पनाशक्ति का विकास होता है। व्यक्तिगत प्रयोगों, योजनाओं तथा पुनः आविष्करण का अवसर मिलता है। बालक आविष्कर्ता तथा खोजकर्त्ता का रूप धारण कर लेता है। शीघ्र सोचने तथा सावधान रहने के गुणों का विकास होता है, सामाजिक ज्ञान, इन्द्रिय साधना, विचार तथा कार्यों में अनुशासन आदि की वृद्धि होती है। उपयोगी कार्यों में बालकों को एक वास्तविक प्रेरणा मिलती है। जब उन्हें आविष्करण, संयोजन, निर्माण आदि करना पड़ता है तो बड़ा आनन्द प्राप्त होता है।

बालक को अपने बड़ों का अनुकरण करने में आनन्द आता है। जो कुछ वह देखता है, सुनता है या को करना चाहता है। जब वह किसी को कुछ करते देखता है तो वैसा ही करने की उस की भी इच्छा होती है। इस कार्य में वह अपनी शक्ति लगा देता है। उदाहरण के लिए किसी को सन्दूक बनाते देख कर उसकी भी इच्छा हो आती है। इस के लिये उस इच्छा को कार्य में परिणत करने का प्रश्न उठता है। अतः अनेक समस्याएं सामने आती हैं जैसे—संयोजना, ठीक प्रकार की लकड़ी छांटना, आवश्यक अङ्कों को नापना, सामग्री तैयार करना, किनारों और कोनों को ठीक करना इत्यादि। इस के लिए औजारों और निर्माण की क्रियाओं का ज्ञान आवश्यक है। इस के अतिरिक्त उपस्थित होने वाली कठिनाइयों को हल करने के लिए पर्याप्त अनुशासन और धैर्य की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार इन उपयोगी कार्यों के करने में ठीक प्रकार की शिक्षा प्राप्त होती है।

विद्यालय में जीवन का वास्तविक अनुभव प्राप्त होना चाहिए जो आनन्दपूर्ण भी हो। बालक भोजन बनाने, मकान बनाने क्रय-विक्रय करने, हाथ से वस्तुएं बनाने आदि कार्यों में आनन्द लेता है। बालक के जीवन को सुखी तथा उपयोगी बनाने के लिए ऐसे कार्य विद्यालय में सिखाने चाहिएँ।

विद्यालय में प्रकृति और समाज का सम्मिश्रण होना चाहिए। बालक की प्रकृति या मूल प्रवृत्तियाँ शिक्षा का आधार बनानी चाहिएँ और समाज में किये गये कार्यों को विद्यालय में कराना चाहिए। इस प्रकार बालक की प्रकृति तथा समाज के कार्यों को शिक्षा में सम्मिलित कर लेना चाहिए।

शिक्षा की गति धीरे-धीरे क्रम पूर्वक होनी चाहिए अर्थात् साधारण वस्तुओं से आरम्भ कर के छानबीन के विशाल क्षेत्रों में प्रविष्ट कराना चाहिए। उदाहरण के लिए बालक आरम्भ में सन्दूक या खिलौने बनायें और बाद में रेडियो सेट, ग्रामोफोन तथा अन्य कठिन वस्तुएँ तैयार करें।

ड्यूई प्राचीन ढंग की शिक्षा का विरोधी है। वह आजकल की निष्क्रिय शिक्षा को पसन्द नहीं करता। पाठ्य विषय, पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तक आदि में अध्यापकों या शिक्षा अधिकारियों द्वारा पहले से ही जो तैयार हुई सामग्री रख दी जाती है उस की वह कड़ी आलोचना करता है। उस के विचार में जब आवश्यकता पड़े या परिस्थितियाँ उपस्थित हों तभी विद्यार्थी और अध्यापक मिलकर इन वस्तुओं को तैयार कर लें। वह आजकल के कक्षा अध्यापन को जहाँ स्थान की कमी होती है एक ही स्थान पर डेस्क लगे रहते हैं तथा एक सा ही पाठ्यक्रम तथा पाठ्य पद्धति प्रयुक्त किये जाते हैं—बिलकुल पसन्द नहीं करता है।

वह विद्यालय में प्रजातन्त्रीय जीवन का पक्षपाती है अर्थात् विद्यालयों में स्वतन्त्र अनुशासन और पूर्ण

स्वतन्त्रता का वातावरण होना चाहिए। बालकों को अपना कार्य स्वयं करने तथा क्रियाओं को स्वयं चुनने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। उन्हें किसी विशेष विषय या लेख को पढ़ने का बन्धन नहीं होना चाहिए। शिक्षा उन की रुचि तथा शक्ति के अनुसार होनी चाहिए। अध्यापक को विद्यार्थियों के एक मित्र तथा पथप्रदर्शक के रूप में कार्य करना चाहिए। उस को उन के कार्य में बिना आवश्यकता के हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। वह उन्हें प्रेरित करने तथा अध्ययन के लिए विषय का चुनाव करने के उद्देश्य से उचित परिस्थिति प्रदान कर सकता है। वह आवश्यक सामग्री तथा सहायक पुस्तकें भी सुझा सकता है तथा जहां आवश्यक हो वहां मार्ग-दर्शन तथा परामर्श का कार्य भी कर सकता है। लेकिन उसे अपने आपको सर्वेसर्वा नहीं समझना चाहिए।

ड्यूई विद्यार्थियों के पारस्परिक सहयोग को बहुत महत्व देता है। उस के अनुसार विद्यालय को एक युद्ध-भूमि, स्टुडियो तथा प्रयोगशाला समझना चाहिए जहां सब विद्यार्थी एक साथ शिक्षा प्राप्त करें और एक-दूसरे की सहायता करें। वह कक्षा के विद्यार्थियों में रहने वाली प्रतिद्वन्द्वता तथा ईर्ष्या द्वेष की भावना को जिसमें एक-दूसरे की सहायता करना अपराध माना जाता है, बहुत बुरा समझता है। वर्तमान कक्षा प्रणाली अत्यधिक व्यक्तिगत और स्वार्थ पूर्ण है बालक एक दूसरे की उन्नति देखकर जलते हैं। यह भावना प्रजातन्त्र तथा समाज सुधार के लिए हानिकारक है। वह इस प्रकार की शिक्षा पसन्द करता है जहां विद्यार्थी अलग-अलग नहीं बल्कि एक-दूसरे की सहायता करते हुए मिलकर शिक्षा प्राप्त करते हैं।

लाभ—व्यवहारवाद के अनुसार दी जाने वाली शिक्षा रोचक तथा सक्रिय होती है। बालक कार्य के द्वारा शिक्षा प्राप्त करते हैं। इस में उपयोगिता और व्यावहारिक जीवन को महत्त्व दिया गया है। इस के द्वारा उपयोगी तथा स्वावलम्बी नागरिक पैदा होते हैं। शिक्षा को नवीन रूप प्राप्त होता है और उस में व्यवसायिक पुट आ जाता है। आजकल समस्त योजनाएं जैसे वारधा योजना, सारजेन्ट योजना आदि इस पर आधारित हैं। यह शिक्षा वैज्ञानिक भी है क्यों कि प्रयोगों को महत्व दिया जाता है। इस के अतिरिक्त यह मनोवैज्ञानिक भी है क्यों कि इस में बालक को शिक्षा का केन्द्र माना जाता है। यह प्रभावपूर्ण भी है क्यों कि इस में सामग्री या मूर्त वस्तुओं का बहुत उपयोग होता है। यह शिक्षा मस्तिष्क तथा शरीर में सामंजस्य उत्पन्न करती है, निरे आदर्शवादी विद्वान् उत्पन्न नहीं करती। शिक्षा उद्देश्यपूर्ण होने तथा निगमन पद्धति के उपयोग के कारण बालक सरलता और प्रसन्नता से इसे ग्रहण करता है। विषयों के परस्पर सम्बद्ध होने के कारण बालक का व्यक्तित्व भी सम्बद्ध-रूप में विकसित होता है इस में सामान्य तथा दस्तकारी की शिक्षा साथ-साथ दी जाती है। दस्तकारी को महत्व देने तथा व्यवसायिक शिक्षा की प्रधानता के कारण आधुनिक समय में यह बहुत उपयोगी है। इस में प्रजातन्त्र की भी शिक्षा दी जाती है इस से बालकों का चरित्र भी बनता है क्यों कि ईर्ष्या द्वेष के स्थान पर वे एक-दूसरे की सहायता करते हैं।

दोष—व्यवहारवादी शिक्षा उपयोगिता को बहुत महत्व देती है और दस्तकारी को प्रधानता देती है। इस का उद्देश्य मिस्त्री या कारीगर तैयार करना है। इसमें सैद्धान्तिक पक्ष तथा मानसिक शक्तियों, जैसे तर्क विचार, तर्क आदि का विकास नहीं होता है। इस में कला तथा तथ. संस्कृति को कोई महत्व नहीं दिया जाता है। धर्म तथा नैतिकता के लिए, जो चरित्र निर्माण करते हैं, कोई स्थान नहीं है। यह शिक्षा मंहगी भी बहुत है क्योंकि मूर्त सामग्री बहुत चाहिए। इस के अतिरिक्त बालक दस्तकारी सीखते समय वस्तुओं को बहुत बिगाड़ते हैं। ज्ञान की दृष्टि से यह शिक्षा अधूरी रहती है क्योंकि क्रियाओं तथा विषयों की सम्बद्धता पर बहुत जोर दिया जाता है।

पारिभाषिक शब्द और आचार्य रघुवीर

श्री विजय कुमार माथुर एम० ए०

पिछले बीस वर्षों में हिन्दी को राष्ट्र एवं राज्य भाषा बनाने तथा उसकी समृद्धि के लिये जिन विद्वानों और साहित्य सेवियों ने अधिकतम प्रयास किया है उनमें नागपुर की इन्टर नेशनल एकेडमी आफ इन्डियन कल्चर (सरस्वती-विहार के संचालक डाक्टर रघुवीर का नाम चिरस्मरणीय रहेगा। उनके अथक परिश्रम और घोर लगन के प्रताप से हिन्दी केवल हमारी राज्य भाषा ही नहीं बनी किन्तु उसमें वैज्ञानिक साहित्य की सृष्टि के लिये मार्ग भी प्रशस्त हो चुका है।

आचार्य रघुवीर ने १९३६ के लगभग लाहौर में हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण का श्री गणेश किया था। उस समय तक इस दिशा में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया गया था। दो-चार छुट-पुट प्रयास अवश्य हुये थे किन्तु उनसे किसी प्रकार भी इस समस्या का हल नहीं होता था। अँग्रेजी तथा यूरोप की अन्य भाषाओं में विज्ञान का जो अनन्त भन्डार है उसे हम अपनी भाषा में ला कर किस प्रकार आत्मसात् करें तथा उसमें वैज्ञानिक साहित्य का सृजन किस प्रकार हो—इसी प्रश्न को लेकर हमारी भाषा के सामने एक प्रकार का अनिष्टकारी गत्यवरोध उत्पन्न हो गया था। अनेक मनीषियों का मत था कि अँग्रेजी में जितनी पारिभाषिक शब्दावली है उसे अनुरूप रूप में हिन्दी में रख लेना चाहिए किन्तु ऐसा करने का अर्थ यह होता कि भरती के इस प्रकार के विदेशी शब्दों को, जिनकी संख्या लाखों तक पहुंचती है, ले लेने से हमारी भाषा का रूप सर्वथा ही बिगड़ जाता। इतना अधिक बिगड़ जाता कि उसे पहचानने में भी कठनाई होती। और फिर विदेशी शब्दों के समूह के समूह अपरिवर्तित रूप में लेकर हमारा सारा वैज्ञानिक साहित्य विदेशी साहित्य की अनुकृति मात्र रह जाता। शब्दों से ही भाषा बनती है और शब्द बनते हैं हमारे विचारों से और वे हमारे विचारों के प्रतीक हैं। विदेशी शब्दावली को अपनी भाषा में भर कर हम सदा के लिये अपने मौलिक व स्वतंत्र चिन्तन का मार्ग बंद कर देते।

किन्तु दूसरी ओर यूरोपीय वैज्ञानिक शब्दावली इतनी विशाल तथा विस्तृत है और प्रति दिन इतनी अधिक सम्पन्न होती जाती है कि अपनी भाषाओं में जिनमें अभी तक इतने महान् उपक्रम की कल्पना भी नहीं की गई थी इस शब्दावली के समकक्ष शब्दावली बनाना भगीरथ प्रयास से कम नहीं था। अपनी भाषाओं में इस अभूत पूर्व कार्य को करने की शक्ति किस प्रकार उत्पन्न की जाए यह प्रश्न भी कुछ कम टेढ़ा नहीं था। इस प्रकार हमारी भाषा की उन्नति के दोनों ही रास्ते बंद थे।

डा० रघुवीर ने इस गत्यवरोध को दूर करने के लिये एक नई विचार धारा का सूत्रपात किया। उन्होंने विदेशी पारिभाषिक शब्दावली को अपनी भाषा में केवल अनुवाद रूप में स्वीकार करने का निश्चय किया। इस कार्य के लिये उन्होंने भारत की प्रायः सभी भाषाओं की जननी तथा इस महान् देश की संस्कृति के मूलस्रोत, संस्कृत भाषा को आधार बनाया। उन्होंने अपनी बहु भाषा विज्ञता तथा नैसर्गिक प्रतिभा के बल पर इस महान् भारतीय भाषा की संरचना के तत्वों में निहित उस विराट् शक्ति को शीघ्र ही पहचान लिया जिसके प्रयोग से वे यूरोप के वैज्ञानिक साहित्य की समग्र शब्द तथा विचार सम्पदा को भारतीय रूप में अभिव्यक्त करने की क्षमता प्राप्त कर सकते थे। यह सन्तोष का विषय है कि प्रायः बीस वर्षों के सतत् प्रयत्न और देश के गण्यमान

विद्वानों की सहायता से वे इस दिशा में एक प्रशस्त मार्ग का निर्माण करने में सफल हुये हैं।

संस्कृत में लगभग दो सहस्र मूल धातुएं हैं जिनमें से केवल पांच सौ ही अधिकतर काम में आती हैं। इस भाषा के विशाल भवन की ये ईंटें हैं। इनके अर्थ बहुत कुछ तरल तथा आनम्य हैं। जिस प्रकार कपास के पिण्ड में से तकुवे के घूमने से डोरा तेजी से निकलता रहता है उसी प्रकार इन धातुओं के रूपहीन पिण्ड में से बीस उपसर्गों और प्रायः अस्सी प्रत्ययों के प्रयोग से नए-नए अर्थ तथा निश्चित रूप वाले शब्द निकलते चले जाते हैं—हृ धातु का केन्द्रीय अर्थ है 'हरना' और इसी से 'हरण' बना है—अब इस में प्र आ, सम्, वि, परि उपसर्ग जोड़ने से क्रमशः प्रहार, आहार, संहार, विहार और परिहार शब्द बनते हैं जिनके अर्थ केन्द्रीय भाव से मूल रूप में सम्बद्ध होते हुए भी सर्वथा भिन्न हैं। इनके अतिरिक्त शेष उपसर्ग ये हैं—अति, अधि, अनु, अप, अपि, अभि, अव, उद्, उप, दुः, नि, निः, परा, प्रति और सु।

इसी प्रकार तव्य (गंतव्य), अनीय (भेदनीय), तर, तम (अधिकतर, तम), मय (स्वर्णमय), शः (अल्पशः), ता (जनता) क (बालक) इत्यादि कृदन्त तथा तद्धित प्रत्ययों के संयोजन से धातुओं तथा संज्ञाओं के अर्थों में विभेद उत्पन्न हो जाता है। डा० रघुवीर ने इसी रीति को अपना कर जो वास्तव में संस्कृत की संरचना का प्राचीन आधार है, वैज्ञानिक एवम् पारिभाषिक शब्दावली के लिये नए-नए शब्दों का निर्माण प्रारंभ किया। इस रीति का विशेष लाभ यह था कि अंग्रेजी की वैज्ञानिक शब्दावली का, जहां प्रत्येक शब्द का अर्थ निश्चित और अनेक सम्बन्धी शब्दों से भिन्नता लिये हुये हैं भारतीय भाषा में अनुवाद करते समय बड़ी सुविधा होती है। इस प्रकार इस रीति से पारिभाषिक शब्दावली का केवल एक-एक शब्द अलग-अलग नहीं किन्तु अपने संबंधी शब्दों के समूह के साथ अनुदित किया जा सका जिससे डा० रघुवीर अपनी शब्दावली को एक क्रमबद्ध तथा संघटित रूप प्रदान कर सके। यही विशेषता आगे चल कर उन की इस क्षेत्र में अपूर्व देन साबित हुई क्योंकि इसी विशेषता के कारण भारतीय भाषाओं खास कर हिन्दी में, अंग्रेजी शब्दावली की भांति ही विज्ञान के अनन्त शब्दों का निर्माण किया जा सकता है और इस प्रकार विज्ञान के विदेशी रूप को भारतीय बना कर हम उसे सरल तथा सुगम भी बना सकते हैं – इस प्रकार हिन्दी के पुराने ढांचे को नवीन विचारों के लिए विस्तृत तथा सुदृढ़ बनाने के कारण यदि आचार्य रघुवीर को आधुनिक हिन्दी का पाणिनि कहा जाए तो शायद अतिशयोक्ति न होगी।

जून १६५५ में नागपुर से ए. कम्प्रिहेन्सिव इङ्गलिश हिन्दी डिक्शनरी प्रकाशित हुई। इसमें बृहदाकार के प्रायः १८०० पृष्ठ हैं और एक लाख से ऊपर पारिभाषिक शब्द जिनका सम्बन्ध आधुनिक विज्ञान की अनन्त शाखा-प्रशाखाओं से हैं। इससे पहले श्री डा० रघुवीर ने विषयों के अनुसार कई छोटे कोष प्रकाशित किए थे। इन के साथ ही नागपुर विश्वविद्यालय के लिए इंटरमीडिएट-विज्ञान की लगभग ३४ पाठ्य पुस्तकें नई शब्दावली में लिख कर प्रकाशित हो चुकी थीं। इस विश्वविद्यालय में विज्ञान की शिक्षा इसी शब्दावली द्वारा इन्टर की कक्षाओं में सफलता पूर्वक दी जाती रही है। इस कोष के प्रकाशन से तो इस क्षेत्र में क्रान्ति ही उत्पन्न हो गई है क्यों कि इतनी बृहत् शब्दावली, जिसके निर्माण में अनेक विद्वानों ने भाग लिया है—इतने वैज्ञानिक ढङ्ग से आज तक न बनाई गई थी।

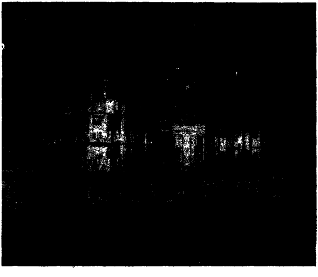
वैज्ञानिक शब्दों के अतिरिक्त प्रशासन संबंधी शब्दों की भी, स्वतन्त्रता के पश्चात्, देश में बहुत आवश्यकता थी। डा० रघुवीर ने इस कोष में प्रायः सभी ऐसे शब्दों का सन्निवेश किया है और यह हर्ष का विषय है कि इनमें से अधिकांश नवनिर्मित शब्द थोड़े ही समय में हमारी भाषा का अविच्छिन्न अङ्ग बन गए हैं। कुछ के उदाहरण ये हैं—संविधान (कोन्सटीट्यूशन), विधान (लेजिस्लेशन), संसद (पार्लियामेंट) अधिनियम (ऐक्ट), सचिव (सैक्रेट्री , सचिवालय (सैक्रेट्रीयेट) मंत्रालय (मिनिस्ट्री) आयुक्त (कमिश्नर), प्रतिरक्षा (डिफेन्स), शासन (गवर्नमेंट), प्रशासन (एडमीनिस्ट्रेशन) आदि आदि। ये शब्द समाचार पत्रों, राजकीय सूचना पत्रों तथा प्रशासन सम्बंधी अनेक पुस्तकों में व्यवहृत हो रहे हैं—इनके निर्माण से हमारी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति में अद्भुत विस्तार हुवा है। अनेक प्रांतों के प्रशासन में भी इन शब्दों के व्यवहार के कारण जनता को बहुत सुविधा हो गई है।

डा० रघुवीर ने इस प्रकार वैज्ञानिक शब्दावली का हिन्दी में (तथा अन्य भारतीय भाषाओं में भी—क्योंकि शब्दावली संस्कृत में है) सूत्रपात ही नहीं किया वरन उन्होंने इस कार्य को काफी आगे भी बढ़ाया है। उन्हें अपने महान् किन्तु कठिन कार्य में पग-पग पर अनेक विरोधों और रुकावटों का सामना करना पड़ा है किन्तु उन्होंने विषम परिस्थितियों में कभी हार नहीं मानी और जिन आदर्शों को सामने रख कर उन्होंने अपने महान् कार्य का श्री गणेश किया था उनका आज भी वे पूर्ववत् पालन कर रहे हैं।

वास्तव में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण कार्य पर डा० रघुवीर के जिस अदम्य उत्साह की छाप पड़ी है उसकी मूल प्रेरणा उन्हें अपने भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट प्रेम से मिली है। उन्होंने हमारी प्राचीन संस्कृति के उद्धार के लिए भी महान् प्रयत्न किये हैं। इस के लिए वे यूरोप तथा एशिया के अनेक देशों में बार-बार घूमते रहे हैं। अभी हाल ही में वे चीन और रूस गए थे जहाँ इन देशों के शासन ने उन्हें निमंत्रित किया था। चीन से प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों, मूर्तियों, अभिलेखों आदि के रूप में जो सामग्री वे भारत लाए थे वह इतनी विशाल है कि उसके केवल एक अंश की प्रदर्शनी शिक्षा मंत्रालय के तत्त्वावधान में नई दिल्ली में की जा सकी थी। इसी प्रकार रूस, मध्य-एशिया, मंगोलिया, तिब्बत जावा, बाली लंका आदि देशों से भी डा० रघुवीर ने प्राचीन भारतीय संस्कृति सम्बन्धी अनन्त सामग्री लाकर सरस्वती विहार को विभूषित किया है। कहा जाता है कि बृहत्तर भारत के इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं कला के अध्ययन के लिए भारत में अन्यत्र इतनी अधिक मूल्यवान् सामग्री नहीं है जितनी सरस्वती विहार में। यह प्रसन्नता की बात कि इन्टरनेशनल एकेडमी जो वास्तविक रूप में ही अन्तर्राष्ट्रीय है शीघ्र ही दिल्ली में कार्य प्रारम्भ करेगी और भारतीय संस्कृति के अनेक विलुप्त अध्यायों को पुनः लिखने में समर्थ हो सकेगी। आचार्य रघुवीर से देश को बहुत आशाएं हैं भगवान उन्हें चिरायु करे।

परमाणु के शान्तिपूर्ण उपयोग

इस लेख में मास्को की औद्योगिक प्रदर्शनी के एक सर्वाधिक जनप्रिय मण्डप का परिचय दिया जा रहा है।



प्रयोगात्मक 'हैवी वाटर रिएक्टर' का एक माडल

प्रदर्शनी का टिकट खरीदने वाला कोई भी व्यक्ति इस मण्डप में भी आ सकता है; परन्तु उसे यह मण्डप देखने को मिले, इस के लिए उसे पंक्ति में खड़ा होना होगा। क्योंकि इसे देखने वालों की भीड़ लगी रहती है। यह भी समझ लीजिए कि इस मण्डप में जो चीजें दिखलाई गई हैं और जिन्हें हर कोई देख सकता है, वे कुछ काल पहले तक सभी देशों में 'अति गोपनीय' मानी जाती थीं।

परमाणु रिएक्टर? आप इसे देख सकते और इस के जितने चाहें, फोटो उतार सकते हैं। यह परमाणु शक्ति एकत्रित करने वाला कार्यरत यन्त्र अब उतना ही गुप्त है जितना मेट्रो स्टेशन: अगर आप के पास टिकट है, आप सीधे भीतर चले जाइए और देखिए।

फिर भी आगन्तुओं को इस के साज-सामान के इर्द-गिर्द अब भी रहस्य की छाया जान पड़ती है और इस के विपरीत हो भी कैसे सकता है, जब कि एक बड़े तालाब के पास जा कर आप देखते हैं कि धरातल से छः मीटर नीचे पानी के भीतर नीलापन लिए हुए हरा प्रकाश हो रहा है। और जब आप को मालूम होता है कि आप जो चीज देख रहे हैं वह परमाणविक 'उद्गार' है, तो आप कांपने लगते हैं और पानी के भीतर की आग आप को आकाश गङ्गा की चमक-दमक की याद दिलाती है और आप इसे रहस्यमय पाते हैं, ऐसी चीज जो इस दुनियाँ के बाहर की हो।

कुछ लोगों को जब यह मालूम होता है कि तालाब की जल राशि ही आगन्तुकों को परमाणु के 'सम्पर्क' से बचाती है तो वे बड़ी सावधानी से तालाब के पास से हट जाते हैं। ऐसा करने की जरूरत नहीं, क्योंकि परमाणु को बड़ी सावधानी से बाहर आने से रोक दिया गया है— भूतों को खदेड़ कर बोतल में बन्द कर दिया

गया है और यह बात सब जानते हैं कि जब तक बोतल की काग बन्द रहती है, तब तक भूत ठीक से व्यवहार करते हैं तथा आदमी की आज्ञा मानते हैं।

यह मण्डप दिखलाता है कि परमाणु किस प्रकार सुचारु रूप से मानव की सेवा करता है, यदि परमाणु की व्यवस्था करने वाले व्यक्ति के इरादे शान्तिपूर्ण और नेक हों, तो परमाणु कैसा 'शान्तिपूर्ण' और 'नेक' रहता है।

एक पारमाणविक उपकरण बियर की बोतलें गिन रहा है तथा एक पारमाणविक विधि के द्वारा इस का पता लगाया जा रहा है कि कारखाने फर्श पर बिछाए जाने वाले टाट की रङ्गाई सब जगह समान हुई है या नहीं—कार्य में लगाया परमाणु इस प्रकार के साधारण काम कर रहा है और अब उस का सारा रहस्य समाप्त हो गया है।

उन का रहस्य तो समाप्त हो गया है, परन्तु शक्ति समाप्त नहीं हुई। यहां कैंसर वाले तन्तुओं को रेडिओ सक्रिय करने के लिए एक शान्तिपूर्ण पारमाणविक 'बन्दूक' है। दर्शक इसे कृतज्ञ भाव से देखते हैं। ऐसी 'बन्दूकों' ने अनेक लोगों को अच्छा किया है और यहां परमाणु चालित बर्फ तोड़क का एक माडल है—थोड़े से पारमाणविक पदार्थ की सहायता से जहाज बर्फ की मोटी-से-मोटी तह को काट डालेगा और उस के परे दो लाख किलोवाट की क्षमता के एक बिजली घर की रूप-रेखा बनी है। यह बिजली घर चालू पंचवर्षीय योजना काल में बनेगा। पंचवर्षीय योजनाकाल की समाप्ति तक देश के पारमाणविक बिजलीघरों की कुल क्षमता २० से २५ लाख किलोवाट तक हो जायगी। शक्तिशाली परमाणु बड़ी तेजी से सोवियत संघ के राष्ट्रीय अर्थतन्त्र का अङ्ग बन रहा है।

मण्डप में एक-दो घण्टे बिताने से आप अनेक बातें जान सकते हैं। एक हाल में आप एक पोस्टर देखेंगे जिस में लिखा है: 'धरती साढ़े पांच अरब वर्ष की है,' और वहां लोगों को समझाने के लिए लगा तख्ता हमें बतलाता है कि रेडिओ सक्रियता के सहारे धरती की आयु निर्धारित करना कैसे सम्भव हुआ। वह यह भी बतलाता है कि तेल की सम्भावना की खोज में परमाणु कणों का किस प्रकार प्रयोग किया जाता है, भोजन को सुरक्षित रखने में, बीजों को और जल्द उगाने में, फसलों की वृद्धि में, हवा भट्टियों



बीजाणविक-रिएक्टर

का पलस्तर ठीक है या खराब हो गया है, इसे जानने में व और भी बीसियों कामों में उन का किस प्रकार उपयोग होता है।

पारमाणविक साज-समान की शक्ति, 'परमाणु ईंधन' का स्रोत यूरेनियम है। यह एक प्रकार का तत्व है जिस को विघटित करने से उस के परमाणु से बहुत अधिक शक्ति निःसृत होती है धरती में दूसरी चीज़ों के साथ-साथ लाखों-लाख टन यूरेनियम भी है, परन्तु इसे निकालना बहुत आसान नहीं है। दो तख्तों पर सोवियत सङ्घ में पाये जाने वाले खनिज पदार्थों और यूरेनियम के नमूने प्रदर्शित किए गए हैं। प्रदर्शित पदार्थों में कोई ८० चीज़ें हैं। यह दुनियाँ का सब से बड़ा संग्रह है।



शरीर के अन्दर गहरे बैठे हुए व्रणों की चिकित्सा का आरोग्यकर गामा यन्त्र।

मण्डप में परमाणु शक्ति के व्यावहारिक प्रयोग की ही बात नहीं बतलाई जाती; इस के सम्बन्ध में होने वाले सैद्धान्तिक काम की, परमाणु की बनावट के सम्बन्ध में वर्तमान विचार-धारा की भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। ज्योंही आप मण्डप में घुसते हैं, धातु की एक चमकती हुई चीज़ देखते हैं। यह सौर-मण्डल का माडल जैसा जान पड़ता है। यह परमाणु का माडल है : बीच में न्यूक्लियस है और उस

के इर्द-गिर्द इलेक्ट्रोन घूम रहे हैं। गाइड (समझाने के लिए नियुक्त व्यक्ति) से इस की कहानी सुनिए, तब आप को पता चलेगा कि न्यूक्लियस परमाणु का नन्हा सा भाग है—दोनों की तुलना बालू के कण तथा पहाड़ से की जा सकती है। फिर भी, न्यूक्लियस में विद्यमान पदार्थ का घनत्व असाधारण है। यदि अंगुश्ताने में खूब ठूंस-ठूंस कर न्यूक्लियसों को भरना सम्भव हो, तो अंगुश्ताने का वजन २० करोड़ टन से अधिक होगा। दूसरे शब्दों में दुनियाँ के समस्त जहाज़ों के वज़न से अधिक होगा।

न्यूक्लियस के अति छोटे कण बड़ी तेजी से घूमते हैं तथा उन में अपार शक्ति रहती है। इन कणों की सहायता से परमाणु का विस्फोट करन से परमाणु चूर-चूर हो जाता है। इन कणों की गति में बनावटी ढङ्ग से वृद्धि करने के भी तरीके हैं और इस प्रकार गति-वृद्धि होने से उन की शक्ति बढ़ जाती है। इस उद्देश्य-सिद्धि के लिए शक्तिशाली मशीनें, ऐक्सलेरेटर (गति-वर्द्धक) तैयार किए गए हैं तथा प्रदर्शनी में ऐसी मशीनों के फोटो और माडल दिखलाए गए हैं। सोवियत सङ्घ में वर्षों से संसार का सब से बड़ा गति-वर्द्धक सिंक्रोसीक्रोट्रोन काम में आ रहा है। यह यन्त्र कणों को ६८ करोड़ इलेक्ट्रोन वोल्ट की शक्ति प्रदान करता है। एक और मशीन, प्रोटोन सिंक्रोटोन का निर्माण भी समाप्ति के निकट है। यह १० अरब इलेक्ट्रोन वोल्ट की शक्ति देगा।

हमारे संसार में एक नई शक्ति आ गई है। यह है परमाणु शक्ति। इसे शान्तिपूर्ण कार्यों में लगाने से यह प्रकृति की अन्धी मूलशक्तियों को काबू करने में व शक्ति और भौतिक सुख-समृद्धि के प्रचुर उत्पादन में मानव की सहायता करेगी।



यूरेनियम धातु का संसार में सब से बड़ा संग्रह।

चम्बल घाटी में तीन हजार वर्ष पुराना नगर

मध्यभारत की चम्बल घाटी में नागदा स्थान पर खुदाई में, इमारतों के अनेक भग्नावशेष तथा विभिन्न प्रकार के चित्रित मिट्टी के बर्तन



नागदा के भूगर्भ से निकले भवनों के अवशेष।

मिले हैं, जो ईसा पूर्व एक हजार वर्ष पुराने हैं। इस के अलावा किलेबन्दी किए हुए नगर के भी चिन्ह मिले हैं, जो काफी समय तक समृद्ध रहा होगा।

भारत सरकार के पुरातत्व विभाग ने हाल में यह खुदाई कराई थी। विभाग का उद्देश्य मध्य तथा पश्चिम भारत में प्राचीन संस्कृति का पता लगाना था।

नागदा की खुदाई से ऐसा जान पड़ता है कि यहां की संस्कृति गङ्गा घाटी की और सिन्धु घाटी संस्कृतियों के बीच की कड़ी थी।

कुछ समय पूर्व भी इस क्षेत्र में खुदाई हुई थी, जिस से यह प्रकट हुआ कि प्रचानी संस्कृति के रचयिता एक विशेष प्रकार के चित्रित मिट्टी के बर्तन प्रयोग में लाते थे। उस जमाने के औजार भी पत्थर या तांबे के बने हुए थे। सम्भवतः उस समय तक लोगों को लोहे का ज्ञान नहीं था। कांस्य-पाषाण संस्कृति समस्त मालवा और दक्षिण के कुछ भागों में फैली हुई थी। गोदावरी, ताप्ती, नर्मदा और चम्बल नदियों के किनारे बस्तियां बसी हुई थीं।

वर्तमान खुदाई से ऐसा जान पड़ता है कि नागदा काफी समय तक समृद्ध नगर रहा। यह संस्कृति का एक सदृढ़ केन्द्र रहा होगा। उस

समय मनुष्य कच्ची इंटों के बने मकानों में रहते थे तथा पत्थर के छोटे औज़ारों को काम में लाते थे। जिस तरह के कच्ची ईंटों के बने मकान, इस स्थान पर पाये गए हैं, वैसे कांस्य पाषाण संस्कृति के किसी अन्य स्थान में अब तक नहीं पाये गए हैं। चित्रित मिट्टी के बर्तन और दूर-दूर तक फैली इमारतों के भग्नावशेष, उस समय की जनता की समृद्ध दशा के द्योतक हैं। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि बाहर से आक्रमण का उस समय बहुत आशङ्का रहती थी। हाल की खुदाई में जो इमारत का ढांचा निकला है, वह नगर की सुरक्षा की दीवाल का किला या प्रतीत होता है। इस चिह्न से सिन्ध घाटी की संस्कृति के सम्बन्ध का संकेत मिलता है, जहां नगरों में ऐसी ही किलेबन्दी थी।

नागदा की खुदाई का काम महत्वपूर्ण जान पड़ता है। इस से मध्य तथा पश्चिम भारत की कांस्य-पाषाण संस्कृति का सम्बन्ध गङ्गा घाटी की प्राचीन संस्कृति से जुड़ता है। कहा जाता है कि सिन्ध घाटी की संस्कृति दक्षिण में सौराष्ट्र तक फैली हुई थी।

इस क्षेत्र में और अधिक खुदाई होने पर, अच्छे परिणाम निकलने की आशा है।

सूर्य की शक्ति का उपयोग

संसार की शक्ति के हर साधन का स्रोत सूर्य है। लकड़ी, कोयले और पैट्रोल आदि की गरमी सूर्य की शक्ति का ही एक रूप है। बिजली बनाने के लिए पानी की ज़रूरत होती है और वर्षा का कारण सूर्य ही है।

अनुमान है कि संसार भर का सब तरह के ईंधन का भण्डार १०० वर्ष से अधिक नहीं चलेगा। पानी से बनने वाली बिजली की मात्रा भी सीमित है। इसलिए कुछ ही दिनों में संसार को अपनी ८० प्रतिशत आवश्यकता, अणुशक्ति से पूरी करनी होगी। बाकी १५ प्रतिशत आवश्यकता सूर्य की शक्ति से और ५ प्रतिशत अन्य साधनों से।

चीज़ों के गरम करने में जैसे भाप बनाने में सूर्य की शक्ति का सब से अच्छा उपयोग हो सकता है। समुद्री घास, उगाने में, कुछ रासायनिक प्रक्रियाओं में और चीज़ों को ठण्डा या गरम करने में सूर्य की गरमी का इस्तेमाल हो सकता है। अभी इन सब चीज़ों के बारे में परीक्षण चल रहे हैं और बड़े पैमाने पर इन का उपयोग नहीं किया जा सकता।



हिमालय की घाटियों में

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

भूमण्डल पर मनुष्य सृष्टि कहां प्रारम्भ हुई, यह प्रश्न अब तक विवादग्रस्त है। कुछ विद्वान् आदि सृष्टि का आरम्भ ध्रुव देश से मानते हैं, तो कुछ उसे मध्य एशिया में तलाश करते हैं। मैं भूमण्डल के प्रश्न को पृथक् रख कर इस लेख का प्रारम्भ उस समय से करना चाहता हूँ, जब भारत में मानव ने सामाजिक जीवन आरम्भ किया। यह सर्व सम्मत सी बात है कि मनुष्य जाति के साहित्य में सब से पुरानी और पहली शब्द रचना वेद हैं। जो पुराने लोग वेद की ऋचाओं को ही अपना मार्ग दर्शक मानते और उन्हीं में प्रभु और प्रकृति का गान करते थे, उन का सामूहिक नाम आर्य था। हमारे पास यह मानने के लिए बहुत पुष्ट और पुष्कल प्रमाण हैं कि उन आर्यों का प्रारम्भिक निवास स्थान हिमालय की ऊंची घाटियों में और हिमाच्छादित चोटियों पर था। भारत के इतिहास का पहला परिच्छेद कश्मीर और तिब्बत के ठण्डे और सुहावने पर्वतों और मैदानों में लिखा गया था। यही वह प्रदेश थे, जिन्हें उत्तरकालीन आर्य 'स्वर्ग' 'नर्क' आदि नामों से पुकारा करते थे।

उस समय आर्यों का जीवन अत्यन्त सरल और अछूता था। अन्य किसी सभ्यता या संस्कृति का प्रभाव उस पर नहीं था। जल की जैसी शुद्ध धारा गंगोत्री में बहती है, उस समय आर्यों की धार्मिक और मानसिक विचारधारा वैसी ही शुद्ध और अछूती बहती थी। उस पर कृत्रिमता का लेप नहीं था।

वे लोग अपने नेता व राजा को इन्द्र नाम से पुकारते थे। शीत स्थान होने के कारण अग्नि और सूर्य से उन्हें अत्यन्त प्रेम था, वे परमात्मा को उन सब नामों से सम्बोधित करते थे, जो आदर सूचक थे। वे उस में मनुष्य और प्रकृति के सब गुणों का मूलस्रोत देखते थे।

उन में जो शासन प्रणाली प्रचलित थी, उसे न राज सत्तात्मक कह सकते हैं और न प्रजा सत्तात्मक। उस का यदि कुछ नाम रखना ही हो तो हम उसे 'गुणतन्त्रात्मक' शासन प्रणाली कह सकते है। जो सौ बार निर्विघ्न यज्ञ कर ले और शत्रुओं को परास्त करने की शक्ति रखता हो, वही स्वर्ग का राजा इन्द्र बन सकता था, दूसरा नहीं। कभी-कभी नहुष जैसे अयोग्य व्यक्ति भी राजा बनने का यत्न करते थे। परन्तु वे स्वर्गवासियों के लोकमत द्वारा अधिकार च्युत कर दिये जाते थे। इन्द्र वही बनता, और वहां रह सकता था, जिसमें धर्मबल और क्षात्रबल दोनों में सब से अधिक हो। इस प्रणाली का उपयुक्त नाम गुणतन्त्र प्रणाली ही हो सकता है।

सप्तसिन्धु में

आर्य लोग हिमालय की घाटियों से उतर कर सप्तसिन्धु के मैदान में कब आये। इसका हिसाब लगाना इस समय असम्भव ही है। पृथिवी के गर्भ से तथा ऊपर के अवशेषों से जितने हिसाब लगाये गये हैं, वे उस काल तक नहीं पहुंचते, जिस में आर्य लोगों के जत्थे स्वर्ग की ऊंचाई को छोड़ कर पृथ्वी के समतल पर आने और फैलने लगे थे। वह समय सदियों पुराना नहीं युगों पुराना हो गया, उस की इयत्ता अभी तक वैज्ञानिक अन्वेषण भी नहीं लगा सकी।

यद्यपि उस समय की इयत्ता नहीं जानी जा सकती, तो भी उस का एक धुंधला सा चित्र हम अपनी आँखों के सामने ला सकते हैं। उस समय सप्तसिन्धु का प्रदेश वह कहलाता था, जो भारत के वर्तमान चित्र में सिन्ध नदी से आरम्भ होकर गंगा पर समाप्त होता है। प्रदेश का 'सप्तसिन्धवः' यह नाम जिन नदियों के नाम पर पड़ा, वे निम्नलिखित थीं, सिन्धु, वितस्ता, असिक्नी, पुरुष्णी, आर्जिकी या शतद्रु, सरस्वती, दृषद्वती, यमुना और गंगा। उस समय बड़ी नदियां नहीं

थीं। उन का आकार प्रकार छोटा था, जिस का निम्न-लिखित कारण था।

उस युग में जहाँ अब राजपूताना है, वहाँ समुद्र था, जो हिमालय के साथ-साथ विन्ध्याचल तक फैला हुआ था। यह प्रदेश 'सप्तसिन्धु' कहलाता था। हिमालय से उतर कर आर्य लोग सप्तसिन्धु के उपजाऊ और सुन्दर मैदान में आये और समयान्तर में सारे प्रदेश पर विजयी होकर बस गये।

सप्तसिन्धु देश में आर्य लोग कितनी शताब्दियों तक रहे, और कब उसके आगे बढने लगे, इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर अभी इतिहास नहीं दे सकता। हाँ वह जब सप्तसिन्धु में रहते थे, तब उनकी धार्मिक, सामाजिक, और राजनीतिक दशा क्या थी, और उस में कालान्तर में कैसे-कैसे परिवर्तन होते रहे, ये बातें हम तत्कालीन साहित्य से जान सकते हैं।

हिमालय की घाटियों में रहने के समय आर्यों की जो सभ्यता या संस्कृति थी, उसे हम विशुद्ध वैदिक सभ्यता का नाम दे सकते हैं। उस में मनुष्य मुख्यरूप से दो भागों में बंटे हुए थे। पहले सुर या देव, और जो उन का उल्लंघन करने वाले विद्रोही थे, वे असुर दस्यु या दास कहलाते थे। कालान्तर में राक्षस शब्द भी असुरों के लिये प्रयुक्त होने लगा।

मैदान में आकर आर्यों की राजनीतिक और सामाजिक अवस्था में परिवर्तन होने स्वाभाविक थे। जलवायु के परिवर्तन से उन में शारीरिक परिवर्तन भी होने लगे। हिमाच्छादित पर्वतों पर या ऊंची घाटियों पर रहते हुए उन के रंग श्वेत थे, रूप सुन्दर थे, प्रकृति की गोद में निवास करने के कारण नृत्य, संगीत, कविता आदि में उन की प्रवृत्ति अधिक थी। अपेक्षाकृत गर्म स्थानों में आकर उन के रंगरूप और व्यवहार में स्वभावतः परिवर्तन आने लगे। सामाजिक और राजनीतिक संगठन का विकास होना भी स्वाभाविक था। अब केवल एक इन्द्र राजा नहीं रहा, उस के स्थान पर अनेक राजा, अनेक नगर और अनेक वंश हो गए। वर्णों का भेद भी स्थूल रूप में आ गया। उस की द्रवता नष्ट हो कर घनता आ गई। वह काल उत्तरकालीन वैदिक साहित्य में चित्रित है। हम उस का बहुत कुछ विशद चित्र ब्राह्मण ग्रन्थों में देख सकते हैं।

सप्तसिन्धु के निवासी आर्य हिमालय के निवासियों को देवता, सुर आदि नामों से पुकारते थे। सुरलोक की सुन्दर स्त्रियां अप्सरा कहलाती थीं। धरा के निवासी अपने उन छोड़े हुए मूल पुरुषों को बड़े आदर और पूज्य भाव से देखते थे। कभी आड़े वक्त पर भूलोक के राजा स्वर्गलोक के निवासियों की सहायता के लिये उस लोक की यात्रा भी किया करते थे, परन्तु सामान्यरूप से नारदमुनि जैसे पर्यटनशील तपस्वियों के अतिरिक्त देवलोक और मृत्युलोक का परस्पर सम्बन्ध धीरे-धीरे शिथिल हो गया था। केवल इतना शेष रह गया था कि आर्य लोक के निवासी देवलोक के महापुरुषों से अपने वंशों का उद्भव बताने में गौरव का अनुभव करते थे। इस प्रकार भौतिक संबन्ध के बहुत कुछ शिथिल होने पर भी, दोनों लोकों की संस्कृति परम्परा बराबर विद्यमान रही। इसमें सन्देह नहीं कि पूर्वकालीन वैदिक संस्कृति की अविच्छिन्न उत्तराधिकारिणी उत्तरकालीन वैदिक संस्कृति ही थी।

नदी की अनेक धाराएं

प्रारम्भ काल से ही आर्य जाति की अनेक टुकड़ियां भूमि के भिन्न-भिन्न भागों की ओर फैलने लगीं। प्रतीत होता है कि इस के दो कारण थे। प्रथम और मुख्य कारण तो जनसंख्या में था। अटूट प्राकृतिक नियम के अनुसार जनसंख्या निरन्तर बढ़ती गई, यहाँ तक कि पर्वत की गोद उन सब को अपने अन्दर न संभाल सकी। स्थान और वस्तुओं की कमी के कारण आर्यों के जत्थे भूमि पर उतर कर फैलने लगे। कुछ जत्थे सप्तसिन्धु में आये और कुछ जत्थे मध्य एशिया की ओर बढ़े जो फैलते हुए, एक ओर ईरान और दूसरी ओर यूरोप के अनेक प्रदेशों तक पहुंच गए। कुछ इतिहास लेखकों ने यह भी अनुमान लगाया है

कि धार्मिक मतभेद के कारण बहुत से आर्य अलग हो कर ईरान आदि की ओर चले गये। उन का कथन है कि भारत के आर्य सुर पक्षपाती थे, और फारिस के आर्य अहुर 'असुर' की पूजा करते थे। इस से प्रतीत होता है आर्य जाति की उन दोनों शाखाओं में धार्मिक मतभेद उत्पन्न हो गये थे। यह बात निश्चित है आर्य जाति का उमड़ता हुआ जल प्रवाह सुरभक्त और असुरभक्त इन दो भागों में उस समय बंट गया था, जब आर्य लोग नाकलोक से उतर कर भूलोक में बसने लगे थे।

प्रगति के पथ पर

१. दूसरी पंचवर्षीय आयोजना में पिछड़ी जातियों के कल्याण के लिए ९० करोड़ रुपये की व्यवस्था रखी गई है। पहली आयोजना में इस काम के लिए ३९ करोड़ रुपये निर्धारित किये गये थे।

२. कोलम्बो योजना के अन्तर्गत भारत की ८० शिक्षा संस्थाओं में २५३ विदेशी छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

३. कर्मचारी प्राविडेंट फंड योजना इस समय समस्त भारत में २० लाख ५४ हजार कर्मचारियों पर लागू है। यह योजना नवम्बर १९५२ में लागू हुई थी।



४. औद्योगिक वित्त निगम ने अप्रैल १९५५ से लेकर अगस्त १९५६ तक लगभग ६ करोड़ ९१ लाख रुपये के ऋण मंजूर किये हैं,

५. १९५५-५६ में भारत से लगभग ५३ लाख ६४ हजार रुपये के मूल्य की २७०९ टन शोधित एवं अशोधित ग्लिसरीन का निर्यात किया गया।

★

दक्षिण भारत में निंबु घास तेल उद्योग का विकास

श्री वी. गोपालस्वामी

दक्षिण भारत का निंबु घास तेल उद्योग कृषि-कुटीर शैली का डालर कमाने का उद्योग है जो सहस्त्रों आदमियों को काम देता है। संसार की निम्बु घास तेल की कुल उपज का ८० प्रतिशत जिस का मूल्य लगभग १॥ करोड़ रुपये बैठता है, प्रतिवर्ष यहां से निर्यात किया जाता है। इस की उत्पत्ति उत्तरी और केन्द्रीय ट्रावनकोर और दक्षिण मलाबार में केन्द्रित है। यहां का तैयार किया 'कोचीन तेल' 'पूर्व भारतीय तेल' अपने उच्च निम्बु तत्व के लिए प्रख्यात है।

देशी लोगों द्वारा प्रयुक्त आसोत्र छोटे, बांध लपेट कर वहनीय, अल्प मूल्य वाले और प्रवर्तन में सरल होते हैं, और वे पौधे की वस्तु के साथ-साथ रहते हैं। इस क्षेत्रीय आसवन रीति के, जो अब प्रयोग में है, दोष बहुत से हैं।

कृषि-कुटीर उद्योग होने से कृषि और औद्योगिक दोनों अवस्थाओं में विकास होना चाहिए। कच्चा माल अच्छी कोटि का प्राप्त करने को कृषि के आधुनिक वैज्ञानिक रीतियों का सहारा लेना चाहिए।

'आसवन प्रदर्शन केन्द्र' विकसित प्रकार के आसोत्रों द्वारा आसवन, और आधुनिक प्रविधियों को लोक-प्रिय बनाने को स्थापित किए जाने चाहिए।

शुद्ध स्वच्छ तेल के लिए विदेशी मांग को पूरी करने के लिए तेल साफ करने की एकक स्थापित होनी चाहिए।

सहकारी उत्पत्ति और तेल का विपणन (मार्केटिंग) उद्योग को स्थिर करने को अवश्य किया जाना चाहिए।

उप-प्रक्रमित (सब-स्टैन्डर्ड) गुणों वाले तेल का निर्यात रोकने को सरकार को प्रत्येक पग उठाना चाहिए।

सौरभिक 'उत्पत्ति' को निम्बू घास तेल से विधायन (प्रौसेसिंग) करने के लिए और तेल के अन्य उपयोग ढूंढने के लिए सरकार को पग उठाने चाहिए।

अन्य उत्पत तेलों वाले पौधों की जो, जलवायु के अनुकूल हो, खेती के लिए अनुसंधान होने चाहिए।

इस उद्योग में अन्य बड़े उद्योगों के पद तक विकास हो सकने की पर्याप्त क्षमता है।

—

पामारोशा तेलसे अल्प संभार कषायतेल का पृथक्करण

श्री स्व. डा. खुदादाद खां, पीएच. डी.

पहले हम भाप द्वारा संशोधित और पावन कर के पामारोशा तेल व्यावसायिक बाज़ार में भेजा करते थे, जहां वह सदा बिना आपत्ति के स्वीकृत हो जाता था।

एक बार हमें यह सूझा कि शायद, नहीं निश्चय ही, तेल को उच्च शून्यक (हाई वैक्युम) द्वारा संशोधन करना इसे बाज़ार में देने के लिए अधिक अच्छा होगा।

जो शून्यक प्रयोग किया गया वह शक्ति-परिचलित, दो अवस्था वाला, शुष्क शून्य उदञ्च था, और असोत्रक—पात्रों जिनमें ४० पौंड तेल भरा था,

के ऊपरी भाग की शीर्षा पर तेल का ताप तेलतापन (ग्रीयल बाथ) से निरन्तर १० प्रतिशत से १५ प्रतिशत कम रक्खा जिससे उष्णता समान रहे। प्रायः सारा तेल सरलता से आसवित हो गया, और मूर्खता द्वारा बहना या पीछे बह जाना जो १० प्रतिशत रहा अलग एकत्र कर लिया गया। और इस प्रकार पावन कषायमलेल बन गया जो रासायनिक पावन तेल की सभी आवश्यकता को पूरी करता था, पर गन्धियों की गन्ध सम्बन्धी आवश्यकता को पूरी नहीं करता था।

गन्ध कम होने कारण तथ्य प्रतीत हुआ कि गन्ध सुन्दर हल्की गन्ध के प्रसवणों (इस्टर) के छोटे कणों की उपस्थिति के कारण होती है जो भाप द्वारा संशोधन करने में तेल में मिले रहते हैं, पर शून्यम में उबंच में खिंच जाते हैं।

इस प्रकार १२० पौण्ड मोतिया तेल भाप द्वारा ५० गैलन को शून्यक आसोत्र में संशोधित हो गया। ८७ पौंड संशोधित तेल प्राप्त करने में २४ घंटे लगे। शेष तेल में पीत वर्ण बहुत कम आया यद्यपि आसवन धीरे-धीरे हुआ, और आसवन स्तम्भ ऊंचा था, और उस समय भी जब भाप द्वारा शून्यक में संशोधित हो गया पीत था, अर्थात्, जब तेल और जल शून्यक में आसवित हुआ या अब २०$\frac{1}{2}$ इन्च स्तम्भी तेलतापनी पर संशोधित हुआ। १४४ डिगरी—१४५ डिगरी सें० पर आसोत्र शीर्ष पर तेलतापनी का तापमान १८८ डिगरी सें० रख और अति उच्च शून्यक रख कर लगभग वर्णहीन तेल भी प्राप्त हो सकता है। जब लगभग ७१ पौण्ड मोतिये का तेल ५० गैलन शून्यक आसोत्र में आसवित किया तो ७ बजे पूर्वाह्न से ५ बजे पराह्न तक १० घंटे में ३० पौण्ड तेल प्राप्त हुआ, और आसोत्र से ५० पौण्ड जल निकला। यह आसोत्र में संघनित जल था। इस प्रकार तेल का शून्यक द्वारा संशोधन हमारे मस्तिष्क का विकार मात्र सिद्ध हुआ। इससे हमने पुरानी रीति से भाप द्वारा ही संशोधन करने से संतोष करना स्वीकार कर लिया।

—

नींबु घास तेल का प्रमानीकरण

श्री के० एन० रीड

मिलते-जुलते घासों का एक वर्ग है जिन से मधुर गन्ध वाला उड़नशील तेल प्राप्त होता है, और यह बहुत सी घरेलू उपजों में प्रति पूयिक (ऐंटी-सैप्टिक) मुख प्रक्षाल दुर्गन्ध हरमुख (लिलीमैंट) भी है। महत्वपूर्ण संयोगांग (इन्ग्रेडिऐंट) है।

जैसा पहले कहा इन का मुख्य उपयोग सुगन्धि में है पर इन में रोगाणुमार गुण भी होते हैं। बंगलौर में किए गए अभी के काम से ज्ञात हुआ पर्याप्त उच्च रीडियल बाकर गुणक वाले रोगाणुमारक, निंबुघास को मुख्य पदार्थ लेकर, तैयार किए जा सकते हैं।

उद्योग संबंध व्यापारिक प्रभेदों वाले मालों की ओर देखता है, और महत्वपूर्ण मान है वर्ण, स्वच्छता रासायनिक-विश्लेषण, और सर्वोपरि है गंध।

निम्बू घास तेल कुटीर उद्योग के रूप में बनता है और दक्षिण भारत में स्थापित कुटीर उद्योग में ५ न्यादर्श बने हैं। साधारणतया, यह मान लिया गया है कि वर्ण के गुणों में यह है कि उपज का वर्ण पीत से कावाय (ब्रौनिश रैड) तक हो। दुर्भाग्य से एक परेषण में ठोल-ठोल का वर्ण अलग होता है। यह स्वीकार किया जायगा कि सुगंधित माल में या रोगाणुमारक में वर्ण बहुत ही अमहत्वपूर्ण गुणक है। मूल उपज में बहुत रंग होना सुगन्धों का भद्दा या अन्य घरेलू पदार्थों का भद्दा होने का परिचायक होगा।

न्यादर्श स्वच्छ और चमकदार वर्ण के होने चाहिए, पर कुटीर उद्योग की उपजों में बहुत अधिक गंदलापन है। यह भी घरेलू उपजों और विशेषतया सुगन्धों को अन्तिम रूप में प्रस्तुत करने में हानिप्रद है।

सभी न्यायदर्शों का विश्लेषण–फल बिना भेद के ब्रिटिश फार्मास्यूटिकल कोड (संहिता) से मेल खाता है विशेषतया निंबु तत्त्व में।

कुटीर उद्योग से प्राप्त निंबू घास तेल के प्रक्रमण (प्रेडिङ्ग) करने में विशेष मान स्थिर करने की आवश्यकता है कि तैयार माल पेटी दर पेटी अलग-अलग न हो।

अन्य सुगन्धों वाली रसायनों के साथ गन्ध गुणक का स्थिर करना और इस को पक्का करना उन के लिए बड़े महत्त्व का विषय है। जो वैसे घरेलू पदार्थों को जैसे ऊपर बताए गए हैं, बाजार में लाकर बेचना चाहते हैं। —

भारतीय मंडारिन तेल

भौतिको रासायनिक संगठन और भविष्य में विस्तार

श्री गिरधारीलाल तथा पी. एस. प्रभी

निम्बु प्रजातीय तेल के उद्योग का भारत में वर्तमान में बड़ा महत्त्व है, और विशेषतया मंडारिन तेलों के विषय में। भविष्य में भी इन का क्षेत्र विस्तार की बड़ी संभावनाएं हैं।

केन्द्रीय खाद्य प्रोद्योगिकी अनुसंधानशाला में नागपुरी मंडारिन के तेलों के न्यायदर्शों (सेमपिल्स) (ठंड में दबाए हुए) पर किए गए संपरीक्षणों के फल बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इन की तुलना विदेशी और अन्य भारतीय मंडारिन तेलों से प्राप्त आंकड़ों से भी की गई है, और फल उत्साह वर्धक है।

इन तेलों के भौतिको-रासायनिक संगठन और उन की विशेषताओं पर कितने ही गुणकों का, जैसे फल के भेद, पक्वता की मर्यादा, निस्सरण से पूर्व फलों का भंडार में रखना, निस्सरण में प्रयुक्त रीति, निस्सरण आदि से प्राप्त तेल की प्राप्ति (ईल्ड) प्रभाव पड़ता है। इन तेलों को प्राप्ति पर विघायन की उचित रीति, सवेष्टन, और भण्डार में रखने की उचित व्यवस्था करनी भी आवश्यक है।

नारंगी का तेल, जो फलों के रस तैयार करने की निर्माणी से उपसृष्ट के रूप में प्राप्त होता है या डब्बे के फलों की बची खुची सामग्री, निश्चय ही निम्बु प्रजातीय तेलों में सब से अधिक उपयोगी है। इस का इतना कम मूल्य है कि इस से तेल निकालना आर्थिक दृष्टि से लाभदायी रहेगा। नागपुरी नारंगियों के छिलकों से तेल की प्राप्ति १·८५ प्रतिशत, कुर्म की नारंगियों के तेल की २–३ प्रतिशत आती है; और नागपुरी नारंगियों के तेल की उत्पत्ति का व्यय ६ रु० ११ प्रति पौंड के लगभग आता है। —

भारतीय उत्पत तेलों का कृमिहन गुण

विशेषतया निम्बू घास तेल में

श्री वी० सुब्रह्मण्य तथा एस० एम० बसु

कतिपय भारतीय उत्पत तेलों की विशेषतया निंबु घास तेल को कितने ही जैव तत्व के समक्ष आर. यू.

रीति से और क्रिकमाटिन परीक्षण की गेंरेड द्वारा सुधारी रीति से जांच की गई। जैव तत्वों की उपस्थिति में कृमिहन क्रिया में वृष्टव्य कमी दिखाई दी।

विभिन्न जीव शरीरों के समक्ष निंबुघास तेल की कृमिहन क्षमता को नापा गया तो यह सुधब ग्राम्य (ग्राम नेगेटिव) कृमियों के लिए अति उच्च और सुधवा ग्राम्य ग्राम (पौजिटिव) जीव शरीरों के प्रति अति निम्न पाई गई; अम्ल—तीव्र जीव शरीरों के प्रति इसकी क्रिया प्रायः नहीं के बराबर थी।

निंबुघास तेल के मिश्रण की कृमिहन क्षमता पर कतिपय गुणकों के प्रभाव का भी अध्ययन किया गया। दिखाया गया कि यदि अन्य सभी गुणक वही हो तो निंबुघास तेल की कृमिहन योग्यता इसके तत्व के समानुपात में रहती है।

तेल की मिश्रण बनाने में योग्यता और मिश्रक पदार्थ दो अन्य गुणक थे जो इस की कृमिहन सक्रियता पर प्रभाव डालते हैं। जिन मिश्रकों का परीक्षण किया गया उनमें से त्रि-वसलि या दहातु अक्षीय (पोटाशियम ओलिएट) रोजिन साबुन अन्य मिश्रकों के समक्ष अधिक क्षम पाए गए।

कणे का आकार और मिश्रणों की कृमिहन शक्ति परस्पर संबंधित है। मिश्रण की गाढ़ापन और कृमिहन क्रिया में कोई सीधा सम्बन्ध नहीं पाया गया। मिश्रण बने कृमिक पदार्थ का सम् (पी एच) मिश्रण की स्थिरता के विचार से महत्वपूर्ण था।

मिलाए गए पदार्थ में शीर्ष से अधिक मिश्रक को मिलाने से निंबुघास तेल की कृमिहन सक्रियता को कम होता पाया गया। कृमियों को दूर करने वाले तेल के घोल में प्रयुक्त घोलक,जो हल्का करने से मिश्रण बनता है, कृमिहन सक्रियता को और मिश्रण की स्थिरता को कम करता पाया गया।

भारतीय उत्पत तेलों के महत्वपूर्ण संयोगाण अलग-अलग किए गए और आर० डब्लू-गुणक के लिए उनका परीक्षण किया गया। कृमिहन क्रिया और संयोग के रासायनिक संगठन के सम्बन्ध का भी अध्ययन किया गया। सी एच ओ वर्ग, ओ एच वर्ग से अधिक सक्रिय था। सरलेन्य सुन्युद में द्विबंध और सुधव की उपस्थिति सक्रिय वर्ग की क्षमता को बढ़ा रही थी।

निंबुघास तेल स्वयं-जारण और उसके निंबु तत्व कृमिहन गुणों को भण्डार-गृह में रखने से कम होने की प्रकृति है। निंबुघास तेल के कृमिहन पदार्थ, रखने पर अपनी कृमिहन क्षमता को खो देते हैं। कुछ जारण विरोधी पदार्थों को शुद्ध तेल में मिलाने से जारण द्वारा नाश होने की क्रिया रुक जाती है परन्तु ये जारण-विरोधी तत्त्व इन कृमिहन पदार्थों की कृमिहन शक्ति को नष्ट होने से बचाने में अक्षम पाए गए।—अनुवादक बाबूराम वर्मा

वन अनुसन्धान शाला, देहरादून में आयोजित उत्पत्त तैल संगोष्ठी में पढ़े गए अनुसन्धान-पत्रों के कुछ सारांश हम यहां दे रहे हैं। उत्पत तैल हमारे देश की महत्वपूर्ण उपज है। विज्ञान गोष्ठी में पढ़े गये ये निबन्ध अतिशय उपयोगी हैं। —रामेश बेदी।

★

- १९५५ में भारत में सम्पदा शुल्क से १,४४,६६,८८४ रु० वसूल हुए।
- १९५५–५६ में भारत में लगभग १,०१,८०० रेडियो सेट बनाए गए।
- बम्बई, हैदराबाद, पटियाव, मणिपुर और त्रिपुरा में सड़क विकास के लिए भारत सरकार ने १५,२५,००० रु० स्वीकार किये हैं।
- १९५५ में भारत में गाड़ियों में बिजली बनाने के जो डायनुमों बनाए गए उनका मू० १५ लाख रु० है।
- दूसरी योजनाओं की अवधि में केंद्रीय सरकार, सवेदिक निरोधक कार्य-क्रम के अन्तर्गत १५ प्रदर्शन और प्रशिक्षण केन्द्र खोलने के लिए सहायता देने का विचार कर रही है।

—

अकूत खज़ानों का देश—साइबेरिया

साइबेरिया सोवियत संघ का सब से बड़ा प्राकृतिक खज़ाना है। जिस के द्वार अभी थोड़ा-सा ही खुले हैं और जिन्हें पूरा खोलना आगे के हमारे कामों में है।

इस खजाने में अकूत सम्पत्ति भरी हुई है।

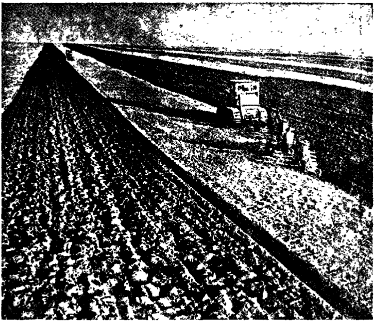
पशु वनस्पति और जड़, ये जो प्रकृति के 'तीन जगत्' हैं तीनों ने अपनी दोनों से साइबेरिया का भंडार भर रखा है।

निराले जङ्गल



निराले जङ्गल

वनस्पति-जगत् ने साइबेरिया को पृथ्वी का सब से बड़ा वन्य-प्रदेश प्रधान किया है। यह ७० लाख वर्ग किलोमीटर (१ किलोमीटर=५।८ मील) के क्षेत्र में फैला हुआ है। यह है साइबेरिया का, जहां भीमकाय देवदार, लार्च, चीड़ और फर के वृक्ष मानों अपने भव्य-सौन्दर्य की प्रतियोगिता करते हैं। सदा-हरित गुण्डाकार रूप साइबेरियाई जङ्गल संसार भर में निराले हैं। उन्हें लोग 'तायगा' कहते हैं। तायगा, अर्थात्, यह उत्तरी वन-प्रदेश इतना घना है कि उस में घास के उगने की भी जगह नहीं होती। साइबेरिया में जङ्गल का सालाना विकास सोलह करोड़ अस्सी लाख घन-मीटर (१ मीटर=लगभग ४० इन्च) होता है।



साइबेरिया में लाखों हेक्टर उर्वर आकृष्ट भूमि जोत में लाई जा रही है।

खेत

खेती की कुल भूमि का ४।५ वां भाग साइबेरिया में ही पड़ता है। साइबेरिया के मध्य और दक्षिणी भाग की विशिष्टता वहां की उर्वर, काली मिट्टी है। उस में गेहूं तो फटकर उपजता ही है, अल्पकालीन किन्तु गर्म ग्रीष्मऋतु में अंगूर तक हो जाते हैं। यहां लाखों हेक्टर उर्वर आकृष्ट भूमि पड़ी है जिस में कभी हल नहीं चला है।

मुलायम सोना

साइबेरिया का पशु-जगत् भी उतना ही सम्पन्न है। उस के घने तायगा, विराट्, विस्तृत टुण्ड्रा और स्टेपी-प्रदेश तथा पर्वतीय दर्रे, जहां झरने बहते हैं, एक प्रकार के प्राकृतिक रक्षा-स्थल हैं जिन में असंख्य भालू, हिरन, साइबेरियाई बारहसिंघे, एल्क, सैकड़ों प्रकार के पक्षी और रोयेंदार खाल वाले जानवर (इन्हें साइबेरिया का 'मुलायम सोना' कहा जाता है) जैसे सेबुल, इर्माइन और ध्रवीय तथा रूपहली लोमड़ियां भरी पड़ी हैं।

अभी हाल तक साइबेरिया ने अपनी प्राकृतिक सम्पत्ति को बड़ी सजगता के साथ किसी की नजर लगने से छिपा रखा था। हां, बीच-बीच में कभी सोने की समृद्ध खानें या ऊपरी सतहों में कोयले अथवा खनिज-लौह के समृद्ध भण्डार साइबेरियाई तायगा में मिल जाते थे किन्तु सोना ही एकमात्र वस्तु था जो क्रांति के पहले लोभी स्वर्ण-अन्वेषकों को आकर्षित किया करता था। अन्य खजाने जो उस से किसी भी

तरह कम मूल्यवान् न थे, व्यवहारतः यों ही बिना अन्वेषण के पड़े थे।

कच्चे माल का समृद्ध भण्डार

प्रथम पंचवर्षीय योजना के काल में जब सोवियत देश ने अपनी औद्योगीकरण-योजना आरम्भ की तब हजारों भूगर्भविज्ञानविद् साइबेरिया में उस की खनिज सम्पत्ति की खोज करने निकल पड़े। यह शोध-कार्य समाप्ति से अभी बहुत दूर है. तो भी यह स्पष्ट पता चल चुका है कि साइबेरिया में कोयले का विशाल भण्डार भरा पड़ा है, ऐसा भण्डार जिस की सारी दुनियां में बराबरी नहीं हो सकती। (वह सोवियत संघ के कुल कोयला-भण्डार का ७५ प्रतिशत है)। इस के अतिरिक्त वहां लोहा, अलौह व अलभ्य धातुओं, रासायनिक कच्चे माल और निर्माण-सामग्रियों के समृद्ध भण्डार हैं। सोवियत भूगर्भ विज्ञानविदों द्वारा साइबेरिया में की गई पहली खोजों की खबर सुन कर मैक्सिम गोर्की ने लिखा : खुशी की बात है कि साइबेरिया ने इतनी विश्वस्तता के साथ अपने खजानों को लोभी पूंजीपतियों से उस दिन के लिए छिपा रखा था जब उन की खोज समूची जनता को लाभान्वित कर सकेगी।

अजस्र शक्ति

जैसा विशाल साइबेरिया का फैलाव है वैसी ही दैत्याकार उस की नदियां हैं। ओब, येनिसेई और लेना एशिया तथा समूची दुनियां की सब से बड़ी नदियां हैं। साइबेरिया के दक्षिणी भाग की पर्वत-श्रेणियों से निकल कर सीधे उत्तर-मुख बहती और पूरे साइबेरिया को पार करती हुई वे आर्कटिक महासागर में गिरती हैं। उत्तर दिशा में बहते हुए इन में बहुत-सी बड़ी-बड़ी सहायक नदियां आ मिलती हैं जिन से इन के अन्दर विशाल जल-समुद्र जमा हो जाता है और वह वर्षा या हिम का रूप धारण कर साइबेरिया के विस्तीर्ण प्रदेश में गिरता है। जल की इन विराट् धाराओं में अजस्र शक्ति भरी पड़ी है। इसे विद्युत् शक्ति में परिवर्तित कर के प्रतिवर्ष तेरह खरब किलोवाट-घंटा बिजली पैदा की जा सकती है। यह अमरीका के सभी बिजली-घरों द्वारा उत्पादित कुल शक्ति की ढाई गुनी अधिक होगी।



फोटो में चट्टान के याकूती हीरा दिखाई दे रहा है, साथ १०.९६ कैरेट का एक हीरा है।

साहित्य-परिचय

[समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं—सम्पादक]

पद्मसिंह शर्मा के पत्र

सम्पादक—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी तथा श्री पं० हरिशंकर शर्मा। प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली।

साहित्यकारों, विद्वानों, राजनीतिज्ञों, समाजसेवकों और सुधारकों के निजूपत्र बड़े महत्व के होते हैं। व्यक्तिगत पत्रों में पत्रलेखक की अन्तः चेतना अपने सहज स्वरूप में प्रतिफलित होती है। उन के द्वारा लेखक के जीवन के अनेक अज्ञात पहलुओं पर सच्चा प्रकाश पड़ता है। विदेशों में महापुरुषों के पत्र साहित्य को बड़ी अच्छी तरह सुरक्षित किया जाता है। हिन्दी में पत्र साहित्य की सुरक्षा और सम्पादन का काम नहीं के बराबर हुआ है। महर्षि दयानन्द के पत्र इस दिशा में पहला और सराहनीय प्रयत्न है। पं० पद्मसिंह शर्मा के पत्र इस दिशा में दूसरा अभिनन्दनीय प्रयत्न है। प० पद्मसिंह शर्मा हिन्दी साहित्य के एक अनूठे महारथी थे। हिन्दी में तुलनात्मक आलोचना की पहल करने वाले वे ही थे। उन का समस्त पिण्ड मानो साहित्य का बना था। उठते-बैठते, खाते-पीते, यात्रा करते वे सदा ही रस की चर्चा और सुकृतियों का आस्वादन और गुणगान करते थकते न थे। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, व्रज, अरबी आदि की सहस्रों सूक्तियां उन को मुखाग्र थी। अपनी लेखनी पर भी उन को कमाल हासिल था। उन की लेखन शैली का हमारे साहित्य में अनूठा स्थान है। उन का स्वाध्याय भी गजब था। दो चार मिनट भी उन का सत्सङ्ग कीजिए, प्राचीन और नवीन कवियों की सूक्तियां, सुभाषित, और साहित्यिक चुटकले आदि सुन कर आप निहाल हो जायेंगे।

ऐसे रसिक और सुविद्य साहित्य महारथी के पत्रों का संग्रह संपादित कर के संपादकद्वय ने बड़ा सुकार्य किया है। श्री चतुर्वेदी की विस्तृत भूमिका ने इस किताब को मानों चार चाँद लगा दिए हैं। विश्व-साहित्य में पत्र साहित्य के महत्व को जिस खूबी और आकर्षक शैली से उन्होंने लिखा है, बस वह पढ़ते ही बनता है। प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी साहित्य के द्विवेदी युग की प्रवृत्तियों की मीठी झाँकियां अपने आह्लादक रूप में देखने को मिलती है। स्वर्गीय श्री शर्मा जी की जिन्दादिली, रसप्रियता, साहित्योद्धार की अद्भुत लगन, बुजुर्ग साहित्यकारों और अपने गुरुओं के प्रति अपूर्व आदर भाव, पद-पद पर सत्साहित्य की दाद, और शैली का चुटीलापन इन पत्रों में आप को भली प्रकार मिल सकेगा। इन पत्रों का ऐतिहासिक मूल्य तो है ही, जो सज्जन केवल मनोरंजन की दृष्टि से भी इन पत्रों का पारायण करेंगे, अच्छा खासा लाभ पायेंगे।

साहित्यानुरागी जनों को इन पत्रों का एक बार जरूर परायण करना चाहिए। श्री चतुर्वेदी जी से हमारी प्रार्थना है कि वे आचार्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी तथा स्वर्गीय शहीद गणेशशंकर जी विद्यार्थी के पत्रों का भी इसी प्रकार का समृद्ध संग्रह तैयार करें। इस कार्य के लिए जो भक्ति शक्ति और सुमति होनी चाहिए, वह उन में पर्याप्त मात्रा में है। पुस्तक का रूप विधान आदि भी सुन्दर है। —शंकरदेव

प्रसारिका (वर्ष २, अङ्क ४—५)

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिल्ली—८।

प्रस्तुत अङ्क में भारत के हिन्दी-भाषी विद्वानों की 'आकाशवाणी' पर प्रसारित ४० रचनाओं का संकलन किया गया है। सभी प्रकार के ज्ञानप्रद विषयों पर इस में रचनाएँ संपादित की गई हैं। चुनी हुई कविताएँ भी दी गई हैं। रचनाओं का चयन कविताएं सम्पादन और मुद्रण बड़ी सुरुचि और सुन्दरता से हुआ है। इस पत्रिका का प्रसार अधिकाधिक होना चाहिए और हमारी सम्मति में इसे शीघ्र ही द्वैमासिक बना देना चाहिए। क्योंकि इस की पाठ्यसामग्री खूब उपादेय और ज्ञानवर्धक होती है। —शंकरदेव

★

गुरुकुल में उप-शिक्षामंत्री डॉ० श्रीमाली

गत २३ सितम्बर को भारत सरकार के उप-शिक्षा मन्त्री डा० श्री माली जी विशेष रूप से गुरुकुल विश्वविद्यालय की कार्य-पद्धति का अवलोकन करने के लिये कुल भूमि में पधारे। आपने पूरे एक दिन तक गुरुकुल में रह कर वेद महाविद्यालय, आयुर्वेद कालेज, कृषि विद्यालय, माध्यमिक विद्यालय, रसायनशाला, संग्रहालय, शब्दकोष विभाग, आयुर्वेद फार्मेसी आदि सभी विभागों के कार्य का अवलोकन किया और प्रसन्नता प्रकट की। कुलपति श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति जी ने गुरुकुल के पुराने इतिहास और कार्य-संचालन प्रसार का आपको परिचय कराया।

साँझ को वेदभवन में आप के सम्मान में समस्त कुलवासियों की एक बड़ी सभा समवेत हुई। कुलपति जी ने विश्वविद्यालय की ओर से आपका स्वागत किया। स्वागत के उत्तर में बोलते हुए श्री माली जी ने कहा— किसी भी राष्ट्र की उन्नति और महिमा उसके सामाजिक मांगल्य से मापी जा सकती है। हमें देखना होगा कि हमारी शिक्षाविधि और संस्कृति हमारे सामाजिक कल्याण के लिए क्या तैयारी कर रहा है वह हमारे समाज की आवश्यकताओं और आदर्शों को पूर्ण कर रही है या नहीं। इसी पर हमारी शिक्षा-प्रणाली की सफलता निर्भर है। एक युग में हमारे देश में आध्यात्मिक जीवन का गौरव था अतः उस काल में हमारी शिक्षा का झुकाव विशेषतः आध्यात्मिक मूल्यों के सम्पादन में था। प्राचीन युग के हमारे गुरुकुलों में आध्यात्मिक शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था।

नए युग में विज्ञान का हमारे जीवन में महत्व बढ़ता जा रहा है। समाज की गतिशीलता के साथ-साथ हमारे जीवन की आकांक्षाएं और मूल्य भी परिवर्तित होते जा रहे हैं। ऐसी अवस्था में हमें अपनी शिक्षाविधि में अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय साधना होगा। अध्यात्म की पृष्ठ-भूमिका पर हमें अपने शिक्षा में विज्ञान को और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को महत्व देना होगा। प्रसन्नता की बात है कि गुरुकुल की शिक्षा में दोनों के समन्वय का ध्यान रखा जाता है।

पूर्व और पश्चिम का सम्मिलन नामक पुस्तक के लेखक श्री नार्थ्रोप ने एक स्थल में लिखा है कि पश्चिम में विज्ञान पर जोर दिया गया और पूर्व में केवल आन्तरिक जीवन पर बल दिया गया था। अतः दोनों की शिक्षा भी पहिले एकांगी रही। इस लिये हमें अध्यात्म और विज्ञान दोनों में सामंजस्य स्थापित करना होगा। पर हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि हम पश्चिम की नकल न करें। नकल का परिणाम पतन होता है। जापान ने पश्चिम की नकल की और हमने देखा उस का पतन हुआ।

हम भारतीय इस समय नवीन समाज का निर्माण कर रहे हैं। हमें ध्यान रखना होगा कि हम जीवन के पुराने मूल्यों को अपनाते हुए नवीन मूल्यों का स्वागत करें—साथ ही समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनावें। विश्वास के स्थान पर प्रयोगों के द्वारा जीवन के मूल्यों को आंकना सीखें। हमारी शिक्षा का ध्येय वैज्ञानिक दृष्टिकोण बनाना होना चाहिये। हमारी दूसरी आवश्यकता इस समय यह है कि हम प्रजा में सच्ची और स्वस्थ राष्ट्रियता की भावना को जगावें। आये दिन की घटनाएं बता रही हैं कि हमारी राष्ट्रियता कमजोर है। शिक्षकों का कर्तव्य है कि वे प्रजा में सच्ची राष्ट्रिय भावना को उद्बुद्ध करें। हमारा भूगोल एक है, हमारा इतिहास एक है और हमारी परम्पराएँ एक हैं। देश में भाषाओं और धर्मों के नानात्व से हमें घबराना नहीं चाहिये। नानात्व में एकत्व को देखना हमें आना चाहिये। लोकतन्त्र भिन्नता को स्वीकार करता है—उसके लिये उदारता का वातावरण पैदा करना शिक्षणालयों का काम है। हमें अपनी उगती प्रजा को समझाना होगा कि लोकतन्त्र असल में जीवन का एक

तरीका है। लोकतन्त्र केवल एक शासन शैली तक ही सीमित नहीं है।

तीसरी बात जिस पर हमें ध्यान देना है वह यह है कि हमारे विश्वासों और कार्यों में एकता स्थापित हो, हम देखते हैं कि हमारा विश्वास कुछ और है हमारा दैनिक जीवन कुछ और प्रकार का है। दैनिक व्यवसायों में हमारे जीवन का जो स्वरूप झलकता है उस के साथ हमारी धार्मिकता मेल नहीं खाती। हमारे विश्वासों और कार्यों में सामंजस्य नहीं है। शिक्षा का यह काम है कि वह विश्वास और कार्य में सामंजस्य लाने की तालीम देवे, जीवन में समग्रता की की स्थापना करे। तभी हमारा समाज आगे बढ़ेगा। तभी हम कल्याणकारी राज्य की रचना कर सकेंगे। इस दृष्टि से विद्यालय और शिक्षक ही भावी समाज के निर्माता हैं।

★

महर्षिस्तवः

श्री धर्मदेवो विद्यामार्तण्डः

[१]

एको ऽपि सन् निर्भयवीरवर्यः
समस्तपाखण्डमखण्डयद्यः ।
सत्यव्रतश्रेष्ठममुं महान्तम्,
ऋषिं दयानन्दमहं नमामि ॥

[२]

न यं कृतान्तो ऽप्यशकद्विजेतुं
यस्याग्रतो बद्धकरः स तस्थौ ।
योगाग्निना दग्धसमस्तदोषम्
ऋषिं दयानन्दमहं नमामि ॥

[३]

विषं प्रदायाप्यपकारकर्त्रे
यो ऽदाद्धनं तस्य हि रक्षणार्थम् ।
प्रेम्णा स्वशत्रूनपि मोहयन्तम्
ऋषिं दयानन्दमहं नमामि ॥

] ४]

यद्यङ्गुलीरप्यरयो दहेयु–
स्तथापि यास्यामि न तत्र चिन्ता ।
इत्यादिवाक्यं समुदाहरन्तं
तंश्रीदयानन्दमहं नमामि ॥

[५]

या यः सिन्धुनिगमविहिताचारनिरतो
लुप्तं सद्धर्मं, पुनरपि समुद्धर्तुमनिशम् ।
वयोरात्रं येते, यतिवरगुणग्रामसहितो
यानन्दो योगी, विमल चरितो ऽसौ विजयते ॥

[६]

वीयं वैदुष्यं, श्रुतिविषयकं लोकविदितं
वीयं योगित्वं, कलियुगजनेष्वस्त्यनुपमम् ।
तार्थं सर्वेषाम्, इह निजसुखं यो ऽपि विजहौ
यानन्दो योगी, निमल चरितो ऽसौ विजयते ॥

[७]

स्वराज्य सर्वश्रः, परमसुखदं शान्तिजनकं
देशीयो धार्यः, सकलमनुजैर्वस्त्रनिवहः ।
वराष्ट्रं चाराध्यं, दिशिदिशिदिशन् भीतिरहितो
यानन्दो योगी, विमल चरितो ऽसौ विजयते ॥

[८]

नाः सर्वे नूनं, भुवनजनितुः पुत्रसदृशाः,
तो ऽन्योन्यं स्नेहः, सकलमनुजानां समुचितः ।
को ऽप्यस्पृश्यो ना, इतिविमलभावं प्रचुरयन्
यानन्दो योगी, विमलचरितो ऽसौ विजयते ॥

★

गुरुकुल समाचार

ऋतु-चक्र

आश्विन के प्रथम सप्ताह में मौसम ने अजब पलटा खाया। पाँच छः दिन तक लगातार बारिश होती रही। मानों चौमासा पुनः लौट आया हो। नदी नाले एकदम उफ़न उठे और पानी खतरे के बिन्दु से ऊपर आगया। सारे प्रांत से ही अति वर्षा के दुष्परिणामों के समाचार आने लगे। यातायात की व्यवस्थाएं भी बीच में ठप्प हो गई। लहलहाती हुई धान की खेतियां एकदम धराशायी हो गई। एकाएक ऋतु परिवर्तन से रोग का वातावरण भी बढ़ गया। विषमज्वर, श्लेष्मज्वर, खाँसी, जुकाम, आदि की वृद्धि हो गई। वर्षा के कारण ही कुलभूमि में विजय-दशमी का रङ्ग भी फीका रहा। दशहरे के बाद से मौसम खुल गया है और गुलाबी जाड़ा पड़ने लगा है।

विजय-दशमी

मौसम में कुछ विरूपता होने पर भी सदा की भाँति गुरुकुल के छात्रों ने यह पर्व बड़ी उमंग से मनाया। कुल की पुरानी परम्पराओं के अनुसार दशहरे के चारों दिन छात्रों के क्रीड़ा-कौतुकों से बराबर गूंजते रहे। विद्यालय-विभाग के छात्रों ने इस वर्ष विशेष रूप से अपना क्रीड़ा आयोजन किया था। जिस का परिणाम इस प्रकार आया है—

क्रिकेट और हॉकी सान्मुख्य में ब्र० प्रियव्रत का दल विजयी हुआ। वॉलीबाल और फुटबाल में ब्र० सुरेन्द्र भाग पुरी का दल जीता। रस्साकशी (गज-ग्राह) में ब्र० देवेन्द्र के दल ने विजय पाई। एक मील की दौड़ और एक टाँग की दौड़ में ब्र० वीरेन्द्र बरेली प्रथम रहा। सौ गज की दौड़ में ब्र० धर्मवीर ८ म (भायला वाली) १ म आया। तीन टाँग की दौड़ में ब्र० धर्मवीर और ब्र० केशवदेव की जोड़ी प्रथम रही। मल्लयुद्ध में ब्र० सुरेन्द्र कलकत्ता विजयी हुआ। लंका-विजय में ब्र० खेमचन्द्र का दल विजयी हुआ। गोला फेंकने की स्पर्धा में ब्र० प्रियव्रत प्रथम रहा। हेमर थ्रो में ब्र० अवधेश और बाधा दौड़ में ब्र० प्रेमचन्द्र प्रथम रहा। विजयदशमी के उपलक्ष्य में विद्यालय के छात्रों ने 'विजया' नामक एक सुन्दर हस्तलिखित पत्रिका भी प्रकाशित की। इस पत्रिका के प्रकाशन में ब्र० राजकुमार बरेली का कार्य प्रशंसनीय रहा।

गाँधी जयन्ती

दो अक्टूबर को गाँधी जयन्ती उत्साह से मनाई गई। बड़े सवेरे छात्रों ने प्रभात फेरी का आयोजन किया। अपराह्न में श्री पं० सुखदेव जी दर्शनवाचस्पति के सभापतित्व में महात्मा जी को श्रद्धांजलियां अर्पित करने के लिए कुलसभा समवेत हुई।

रात को महाविद्यालय वाग्-वर्धिनी सभा की ओर से भी एक सभा की गई। इस में महात्मा गाँधी के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, और धार्मिक विचारों और कार्यों पर विस्तार के साथ अनेक छात्रों और गुरुजनों ने तात्विक विचार किया। गुरुजनों में से श्री पं० सुखदेव जी, श्री पं० वागीश्वर जी, श्री पं० धर्मपाल जी तथा श्री वैद्य निरंजनदेव जी आदि के विचारपूर्ण व्याख्यान हुए।

वाक्-संघर्ष में विजय

देहरादून की वाणी परिषद् द्वारा एक इण्टर कालेज वादविवाद प्रतियोगिता आयोजित की गई थी। इस स्पर्धा में एक दर्जन से ऊपर इण्टर कालेजों ने भाग लिया था। वादविवाद का विषय था—स्वेज नहर का राष्ट्रियकरण उचित है या नहीं! गुरुकुल के छात्र ब्र० चन्द्रकान्त (१ म वर्ष) और ब्र० सहदेव (कृषि-कालेज) के भाषण वहां उत्तम समझे गये और विजयोपहार (चाँदी की ढाल) गुरुकुल संस्था को प्राप्त हुआ। सर्वोत्तम वक्ता का पुरस्कार भी ब्र० चन्द्रकान्त को मिला।

विदेशी यात्री

गत मास चार विदेशी यात्री गुरुकुल में आकर दो दिन तक रहे। आप लोगों ने गुरुकुल की जीवन-शैली और शिक्षाविधि का विशेष रूप से अवलोकन किया। इन यात्रियों में इङ्गलैण्ड के विदेशी सूचना

विभाग के अधिकारी सर पाल ड्यूक महाशय, मीस देश की भारत प्रेमी कुमारी लीला वाल्चर, कोलम्बिया विश्वविद्यालय की कुमारी सिलविया स्कापा तथा पश्चिमी द्वीपसमूह के अध्यात्म प्रेमी श्री केमरन महोदय सम्मिलित थे। आप लोगों ने वैदिक धर्म की शिक्षाओं तथा आर्यसमाज के धर्मसुधार के दृष्टिकोण की स्थानीय विद्वानों से चर्चाएँ कीं। आप को आर्य समाज का साहित्य भी भेंट किया गया।

शारदीय व्याख्यान माला

पुरातत्व-संग्रहालय मथुरा के अध्यक्ष श्री कृष्णदत्त जी वाजपेयी ने गुरुकुल की शरत्कालीन व्याख्यान माला के सिलसिले में तीन व्याख्यान महाभारत काल से लेकर अब तक के उत्तर-प्रदेश के सांस्कृतिक इतिहास पर किये। तीनों व्याख्यान चित्रदीप (मेजिक लेम्प) द्वारा चित्रमय होने से बहुत बोधक और मनोरंजक रहे। प्राचीन काल में उत्तरप्रदेश की भौगोलिक धार्मिक, राजनीतिक तथा कला-विषयक प्रवृत्तियों का आपने बड़ी सुन्दर शैली में इतिहास प्रस्तुत किया। पुरातत्वीय खोज द्वारा प्राप्त प्राचीन मूर्तियों तथा स्थापत्य के चित्रों को प्रस्तुत कर के आपने अपने व्याख्यानों को सर्वगम्य बना दिया था।

विशेष-भाषण

२४ सितम्बर को कुलपति श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति का भाषण भारत की परराष्ट्र नीति और गृहनीति के विषय में हुआ। आपने इतिहास की पुरानी और समसामयिक घटनाओं का विश्लेषण करते हुए भारत की विदेश नीति की सराहना की। आपने यह भी बताया कि राजनीति में भावावेश के कारण अनेक अनर्थ हो जाते हैं। अतः राजनीति में बौद्धिक सन्तुलन और धीरता की नितान्त आवश्यकता है।

संग्रहालय सप्ताह

अन्तर्राष्ट्रिय संग्रहालय आंदोलन के सिलसिले में कुलभूमि में भी 'संग्रहालय सप्ताह' उत्साह से मनाया गया। गुरुकुल संग्रहालय की ओर से एक व्याख्यानमाला व्याख्यान चित्रों सहित आयोजित की गई थी। प्रत्येक व्याख्यान में चित्रदीप द्वारा चित्र प्रदर्शित किये जाते रहे। प्रथम व्याख्यान श्री मदनगोपाल जी ने मीठे और खारे पानी के जलचरों पर दिया। दूसरा व्याख्यान श्री रामेश बेदी ने सांपों की जीवन चर्या पर दिया। तीसरे व्याख्यान में गुरुकुल के जीवविज्ञान के उपाध्याय श्री सम्पतस्वरूप जी ने प्रकृतिविज्ञान संग्रहालय के विकास की कहानी बताते हुए जीव सृष्टि की अद्भुत जीवन चर्या पर प्रकाश डाला। चौथा व्याख्यान श्री शंकरदेव विद्यालंकार ने कुलभूमि के चारों ओर रहने वाले सामान्य पक्षियों तथा कवि कालिदास की रचनाओं में वर्णित पक्षियों पर दिया। पाँचवां सचित्र व्याख्यान में प्रो० हरिदत्त जी वेदालंकार ने विदेशों में पिछले दो हजार वर्षों में भारतीय संस्कृति के फैलाव की कहानी समझाई। इस प्रकार संग्रहालय सप्ताह का कार्य खूब सफल रहा।

आवश्यक सूचना

गुरुकुल कांगड़ी के श्रद्धानन्द द्वार के पुरुषार्थनिधि रसीद पुस्तक संख्या ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ४५० चोरी हो गई हैं। गुरुकुल के प्रेमी दानी तथा अन्य महानुभावों से निवेदन है कि यदि कोई इन रसीदों से धन प्राप्त करता हुआ मिले तो उसे तुरन्त पुलिस के सुपुर्द कर दें और गुरुकुल कांगड़ी को सूचित करें।

